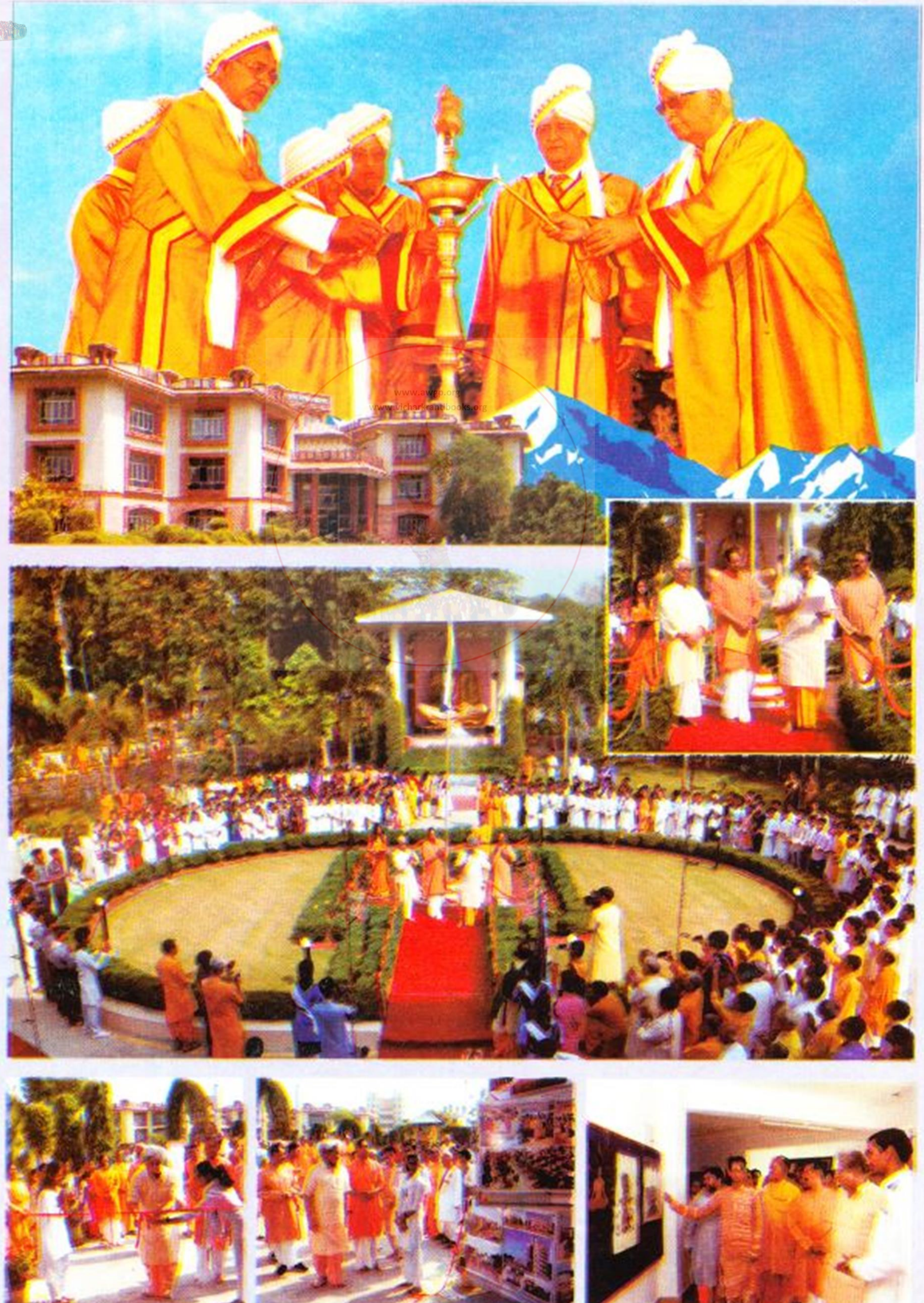
धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

www.awgp.org वर्ष—८१ अंक—७ ₹ —१५ प्रति ₹—१८० वार्षिक जुलाई—२०१७





देव संस्कृति विश्वविद्यालय का पाँचवाँ दीक्षांत समारोह अभूतपूर्व सफलता के साथ संपन्न
समारोह की कतिपय झलकियाँ



संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं०(०५६५) २४०३९४०
२४००८६५, २४०२५७४
मोबाइल नं० ९९२७०८६२९१
७५३४८१२०३६
७५३४८१२०३७
७५३४८१२०३८
७५३४८१२०३९
फैक्स नं० (०५६५) २४१२२७३
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-ajsansthan@awgp.org
प्रातः १० से सायं ६ तक

वर्ष	: ८१
अंक	: ०७
जुलाई	: २०१७
आषाढ़-श्रावण	: २०७४
प्रकाशन तिथि	: ०१.०६.२०१७
वार्षिक चंदा	
भारत में	: १८०/-
विदेश में	: १४००/-
आजीवन	: ३५००/-
(सुरक्षा निधि)	

आत्मज्ञान

आत्मज्ञान में ज्ञान की पराकाष्ठा है, परिपूर्णता है। अपने को न जानने पर किसी और को जानने का कुछ भी मूल्य नहीं है। जो स्वयं से अपरिचित है, वह औरों से कितना ही क्यों न परिचित हो जाए, उसका कोई भी अर्थ नहीं रह जाता। स्वयं के ज्ञान के बिना, औरों के ज्ञान में—अर्थ कम, अनर्थ अधिक है।

मानव जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई, उसका अपने प्रति अज्ञान है। 'दीया तले अँधेरा' वाली कहावत मनुष्य जीवन में सत्य सिद्ध होती है। हम उस सत्ता के प्रति अंधकार में हैं, जो हमारी आत्मा है। स्वयं को जब हम नहीं जानते, तब ऐसे में यदि हमारा सारा जीवन गलत दिशाओं में चला जाता है, तो भला इसमें अचरज क्या है ? आत्मज्ञान के अभाव में, जीवन उस नौका की भाँति है—जिसकी पतवार चलाने वाले बेहोश हैं। फिर भी नौका जिस-तिस तरह, जहाँ-तहाँ, लहरों के सहारे बही चली जा रही है।

जीवन को सम्यक गति एवं गंतव्य देने के लिए स्वयं का ज्ञान अति अनिवार्य है। इसके पहले कि हम यह जानें कि हमें क्या होना है, यह जान लेना बहुत जरूरी हो जाता है कि हम क्या हैं ? हम जो भी हैं, उसे पहचानकर व उससे परिचित होकर ही हम उस भविष्य की संरचना कर सकते हैं, जो कि अभी हममें सुप्त है। हम जो हैं, उसे जानकर ही हममें उसका जन्म होना संभव है, जो अभी अजन्मा है।

जीवन को सार्थकता देने की चाहत जिनमें भी है, उनके लिए आत्मज्ञान आवश्यक है। जो सचमुच चाहते हैं कि वे अपनी जीवन-नौका को पूर्णता के तट तक पहुँचाएँ, तो कुछ और जानने-समझने से पहले, उनके लिए स्वयं को जानना-समझना अनिवार्य है। स्वयं के जान लेने के बाद ही संसार संबंधी अन्य ज्ञान का सदुपयोग हो पाता है अन्यथा अज्ञान के हाथों से होकर आया हुआ समस्त ज्ञान आत्मघाती ही सिद्ध होता है। ज्ञान की पहली आकांक्षा स्वयं को जानने की है। इस बिंदु पर अंधकार है, तो सब जगह अंधकार है। यदि यहाँ प्रकाश है, तो सब जगह प्रकाश है। आत्मज्ञान के प्रकाश में संपूर्ण स्वयं ही संपूर्णता से प्रकाशित हो उठता है। ❑

▶युवाक्रांति वर्ष◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

गोमुख से उतरती गंगा का उनके जन्मदिन (गंगासप्तमी) पर पूजन

जुलाई-अगस्त, २०१७ के पर्व-त्योहार

मंगलवार	०४ जुलाई	देवशयनी एकादशी
रविवार	०९ जुलाई	गुरु पूर्णिमा
बुधवार	१९ जुलाई	कामिका एकादशी
शुक्रवार	२१ जुलाई	शिवरात्रि पूजन
रविवार	२३ जुलाई	हरियाली अमावस्या
गुरुवार	२७ जुलाई	नागपंचमी
शनिवार	२९ जुलाई	सूर्य षष्ठी
रविवार	३० जुलाई	तुलसी जयंती
गुरुवार	०३ अगस्त	पवित्रा एकादशी
सोमवार	०७ अगस्त	रक्षा बंधन
शुक्रवार	११ अगस्त	बहुला चौथ
रविवार	१३ अगस्त	हल षष्ठी
सोमवार	१४ अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'स्मा.'
मंगलवार	१५ अगस्त	स्वतंत्रता दिवस
शुक्रवार	१८ अगस्त	अजा एकादशी
सोमवार	२१ अगस्त	सोमवती अमावस्या/ कुशाग्रहणी/ सूर्यग्रहण
गुरुवार	२४ अगस्त	हरितालिका व्रत
शुक्रवार	२५ अगस्त	श्री गणेश चतुर्थी
शनिवार	२६ अगस्त	ऋषिपंचमी
रविवार	२७ अगस्त	सूर्य षष्ठी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक*

▶युवाक्रांति वर्ष◀



कण-कण में है उपस्थित प्रकृति की पाठशाला

जिज्ञासा, ज्ञान को पुकारती है। निर्मल अंत:करण इसे आकर्षित करता है। गुरुभक्ति होने पर ज्ञान स्वयमेव प्रकट होता है। परमपूज्य गुरुदेव अपनी वार्ताओं एवं संगोष्ठियों में कहते थे कि मैं अपनी मार्गदर्शक सत्ता से, अपने गुरुदेव से प्रत्यक्ष में केवल तीन बार मिला हूँ, लेकिन मेरे हृदय की गुरुभक्ति में वे सदैव प्रत्यक्ष रहते हैं और जीवन के आँगन में पल-पल ज्ञान का अनुदान देते रहते हैं। प्रकृति, सत्पात्र को कभी वंचित नहीं रहने देती और अपात्र को कभी कुछ मिलने नहीं देती। सद्ज्ञान के लिए सत्पात्रता का अर्थ है—निर्मल अंत:करण और अंत:करण की यह पात्रता, निष्काम कर्मों की निरंतरता से मिलती है। अनासक्ति से इसका विकास होता है, गुरुप्रेम से इसकी अभिवृद्धि होती है। ऐसा होने पर सद्गुरु स्वयं अंत:करण में विराजित हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण में महान योगी एवं महासिद्ध दत्तात्रेय के ज्ञानप्राप्ति की कथा है। जब अनेक उपायों से वे अपने ज्ञान से संतुष्ट न हो सके, तो वे सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी के पास अपने समाधान को पाने पहुँचे। ब्रह्मा जी उनसे बोले—''जिनसे ज्ञान की अनुभूति पाई जाती है, वे सद्गुरु तो प्रत्येक व्यक्ति के निर्मल अंत:करण में स्वयं विद्यमान हैं। आवश्यकता केवल अंत:करण की इस अवस्था को पाने की है। जब व्यक्ति का अंत:करण, कषाय-कल्मषों से मुक्त हो जाता है, जब तप-साधना के द्वारा अपने मन के मल-विकार नष्ट हो जाते हैं और निष्कामता, अंत:करण को पवित्र और निष्कलुष बना देती है, तब मनुष्य अपने चारों ओर विस्तीर्ण प्रकृति को देखकर धर्म व अध्यात्म का तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।''

सृष्टिकर्त्ता से यह सूत्र पाकर दत्तात्रेय पृथ्वी पर लौट आए और उन्होंने प्रकृति में घटने वाली छोटी-बड़ी घटनाओं को देखकर, उनका निरीक्षण कर ब्रह्मविद्या की अनुभूति पाई और जीवनमुक्त हो गए। प्रकृति की पुस्तक पढ़कर, अपने आस-पास घटने वाली सामान्य घटनाओं से जब उन्होंने जीवनबोध पा लिया तो वे अवधूत बनकर उन्मुक्त विचरण करते हुए जन-जन को आध्यात्मिकता का संदेश सुनाने लगे। राजा से रंक तक, भोगी से योगी तक हर कोई उनकी अमृतवाणी का श्रवण कर आध्यात्मिक आह्लाद का अनुभव करने लगा।

एक बार महाराज यदु ने दत्तात्रेय से पूछा—''भगवन्! संसार के ज्यादातर लोग काम और लोभ के वश में होकर कष्ट पा रहे हैं। ऐसे में आपने यह जीवनमुक्त अवस्था कैसे प्राप्त कर ली? कृपाकर मुझे भी बताइए कि आपको आत्मा में ही परमात्मा का अनुभव कैसे होता है? आपने इसे किने गुरु के चरणों में बैठकर पाया है?'' इन प्रश्नों के उत्तर में ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेय ने कहा—''मैंने अपने अंत:करण की निर्मलता में अनेक गुरुओं का मूक उपदेश पाया है।'' राजा यदु की जिज्ञासा इससे और भी बढ़ गई। उन्होंने कहा—''भगवन्! अपने ज्ञानप्राप्ति की कथा विस्तार से सुनाएँ।''

इस पर दत्तात्रेय ने कहा—''राजन्! ज्ञान प्राप्त करने के लिए अंत:करण की निर्मलता में सद्गुरु को प्रतिष्ठित करना होता है। उनकी शरण में संपूर्ण रूप से जाना होता है—तब ये ही सद्गुरु, हमें सद्ज्ञान के अवसर प्रदान करते हैं। मुझे भी मेरे सद्गुरु ने २४ गुरुओं के माध्यम से ज्ञानप्राप्ति का अवसर प्रदान किया। उन गुरुओं में पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंगा, भौंरा-मधुमक्खी, हाथी, हरिण, मछली, पिंगला वेश्या, कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला, कुरर पक्षी, सर्प, मकड़ी, भृंगी कीट बालक और अपना यह शरीर हैं।''

इस पर राजा यदु ने कहा—''भगवन्! इनमें से कुछ तो जड़ और बुद्धिहीन हैं, भला इन्होंने आपको क्या उपदेश दिया होगा?'' इस पर दत्तात्रेय ने कहा—''राजन्! जड़ होते हुए भी प्रकृति, परमचेतन परमात्मा की लीला ही तो है। यदि हमारा अंत:करण निर्मल व परिष्कृत हो तो प्रकृति हमें पल-पल सिखाती रहती है। जैसे **पृथ्वी** से मैंने धैर्य व क्षमा का ज्ञान पाया। लोग पृथ्वी पर कितना आघात और उत्पात करते रहते हैं, पर वह न तो किसी से बदला लेती है और न ही रोती-चिल्लाती है। प्राणी जाने-अनजाने एकदूसरे का अपकार कर ही डालते हैं। धीर

व्यक्ति को चाहिए कि वह न तो अपना धीरज खोए और न ही किसी पर क्रोध करे।

''**वायु** से मैंने यह शिक्षा पाई है कि जैसे अनेक स्थानों पर जाने पर भी वह कभी आसक्त नहीं होती और किसी का भी गुण-दोष नहीं अपनाती, ठीक वैसे ही साधक भी न किसी का दोष ग्रहण करे और न किसी से आसक्ति या द्वेष करे। जितने भी चल-अचल पदार्थ हैं, उनका आश्रय स्थान एक ही है—**आकाश**। आकाश को देखकर मैंने यह जाना कि इस विश्व-ब्रह्मांड में जितने भी चर-अचर जीव हैं और स्थिर-अस्थिर पदार्थ हैं, उनमें विद्यमान चेतना ब्रह्मरूप में सर्वव्यापी है। इसी तरह **जल**—स्वभाव से ही स्वच्छ, मधुर और पवित्र है। जल को ही देखकर मैंने यह प्रेरणा प्राप्त की कि मनुष्य को भी अपना स्वभाव स्वच्छ, शुद्ध, मधुर और पवित्र रखना चाहिए।

''**अग्नि** तेजस्वी और ज्योतिर्मय होती है और उसके तेज को कोई दबा नहीं सकता। उसके पास संग्रह-परिग्रह के लिए पात्र नहीं है और वह सब कुछ भस्म कर डालती है। भले-बुरे सभी पदार्थों को भस्म कर डालने पर भी वह किसी वस्तु के दोषों से लिप्त नहीं होती। इसी तरह साधना करने वाले मनुष्य को भी तेजस्वी, इंद्रियों से अपराजित और विषयों से निर्लिप्त रहना चाहिए। **चंद्रमा** की गति तो नहीं जानी जा सकती, परंतु काल के प्रभाव से उसकी गति घटती-बढ़ती रहती है। वस्तुत: वह न तो घटता है और न बढ़ता है। वैसे ही जन्म से लेकर मृत्यु तक, मृत्यु से लेकर पुन: जन्म तक—जितनी भी अवस्थाएँ बदलती हैं, वे सब शरीर की ही अवस्थाएँ हैं। आत्मा का उनसे कोई संबंध नहीं है।

''**सूर्य** अपनी किरणों से पृथ्वी का जल खींचता है और समय पर उसे बरसाता है। वैसे ही, योगीपुरुष समय के अनुरूप विषयों का ग्रहण और त्याग करते हैं, किंतु सूर्य की भाँति उनमें आसक्त नहीं होते। राजन्! इस क्रम में **कबूतर** पक्षी ने मुझे सिखाया कि दानों का लोभ, बहेलिए के जाल में उसे उलझा देता है। इसलिए लोभ से बचना चाहिए। **अजगर** से मैंने यह सीखा कि साधक को हर स्थिति में संतुष्ट रहना चाहिए। **समुद्र** से मैंने यह सीखा कि प्राप्ति में न तो प्रफुल्लित होना चाहिए और न ही अप्राप्ति में खिन्न होना चाहिए। **पतंगा** दीपक पर मोहित होकर उसकी लौ में कूदकर भस्म हो जाता है, वैसे ही इंद्रियभोगों में मोहित पुरुष, उन्हीं विषयों में निमग्न होकर स्वयं को नष्ट कर देता है।

''**भौंरा** छोटे-बड़े पुष्पों से उनका सार भाग ग्रहण करता है। वैसे ही, हे राजन्! बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से उनका सार ग्रहण करे। **मधुमक्खी** से मैंने यह शिक्षा ली कि जिस तरह उसके द्वारा संचित मधु का भोग दूसरे लोग करते हैं, उसी तरह लोभी मनुष्य द्वारा संचित धन कोई दूसरा ही भोगता है। **हाथी** से मैंने यह सीखा कि वह काठ की हथिनी के मोह में फँसकर शिकारियों की कैद में पहुँच जाता है। इसलिए मोह, काष्ठमूर्ति से भी नहीं करना चाहिए।

''**हरिण** अपनी श्रवणेंद्रिय के विषय में आसक्त होकर अपने प्राण गँवा देता है, उसी तरह साधक की किसी एक इंद्रिय में आसक्ति, उसके पतन का कारण बनती है। जिस तरह **मछली**, काँटे में फँसे, मांस के टुकड़े के लोभ में अपने प्राण गँवा देती है—वैसे ही, स्वाद का लोभी मनुष्य भी अपनी जिह्वा के वश में होकर मारा जाता है।

''हे राजन्! विदेह नगरी में रहने वाली **पिंगला वेश्या** से भी मुझे ज्ञान मिला। उसके मन में धन् की बहुत कामना थी। वह सदा सोचा करती थी कि कोई धनी पुरुष आकर उसे अपना सारा धन दे जाएगा। एक रात वह पूरे समय तक प्रतीक्षा में खड़ी रही। देर हो जाने के कारण उसका प्यास व थकान से बुरा हाल हो गया। किसी पुरुष का आगमन न होने से उसे भारी निराशा हुई। इस निराशा के कारण उसे वैराग्य हो गया। उससे मैंने यह सीखा कि दूसरों से आशा कर, उन पर निर्भर रहने में ही सबसे बड़ा दु:ख है। इसलिए दूसरों से कोई आशा न करके, अपने प्रयत्नों पर निर्भर रहने में ही सबसे बड़ा सुख है। उस रात से पिंगला ने भी दूसरों पर आशा करना छोड़ दिया और सुख की नींद सोने लगी।

''एक बार **कुमारी कन्या** के घर उसे वरण करने के लिए वर और उसके कई परिजन पहुँचे। संयोग से वह उस दिन घर पर अकेली थी। इसलिए आतिथ्य-सत्कार का दायित्व उस पर आ गया। उन्हें भोजन कराने के लिए वह घर के एकांत में धान कूटने लगी। धान कूटते समय उसकी कलाई की चूड़ियाँ बज रहीं थीं। इससे उसे बड़ी लज्जा हुई। उसने एक-एक कर सारी चूड़ियाँ उतार दीं। बस, दोनों हाथों में केवल एक-एक चूड़ी रखी। मैंने उससे यह शिक्षा ली कि साधक के चित्त में जब बहुत-सी वृत्तियाँ हों तो वहाँ भी इसी प्रकार कोलाहल उत्पन्न होता रहता है। इसलिए साधक को

अपने चित्त में बस एक ही ध्येय का अवलंबन करना चाहिए।

"एक **बाण बनाने वाला** अपने कार्य में इतना तन्मय हो गया था कि उसके पास से ही राजा की सवारी निकली, पर उसे इस बात का पता ही न चला; क्योंकि वह अपने कार्य में पूरी तरह से तन्मय था। उससे मैंने यह शिक्षा पाई कि साधक को भी अपने ध्येय के ध्यान में निरंतर तथा पूर्णतया तल्लीन रहना चाहिए। ऐसा होने पर संसार में होने वाली उथल-पुथल उसे विचलित नहीं कर पाती।

"एक बार **कुरर पक्षी**, अपनी चोंच में मांस का टुकड़ा लिए बैठा था। उसे छीनने के लिए दूसरे पक्षियों ने उसे अपनी चोंचों से मारना शुरू कर दिया। जब उस पक्षी ने अपनी चोंच में दबाए हुए मांस के टुकड़े को फेंक दिया तो वह कष्ट से मुक्त हो गया। अनावश्यक संग्रह ही दूसरों के मन में ईर्ष्या पैदा करता है और अपनी इस ईर्ष्या के कारण वे कष्ट पहुँचाने लगते हैं। उस पक्षी से मैंने यह शिक्षा ली कि अनावश्यक संग्रह कभी नहीं करना चाहिए। यह हमेशा दुःखों का कारण बनता है।

"**साँप** ने मुझे यह सिखाया कि साधु व साधक को मठ या मंडली बनाने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। **मकड़ी** से मैंने परमात्मा की विश्वरचना का रहस्य जाना। मकड़ी की ही भाँति परमात्मा भी बिना किसी सहायक के अपनी माया से विश्व-ब्रह्मांड के इस जाल को रचते हैं, फिर स्वयं ही जीव रूप में उसमें विहार करते हैं, बाद में स्वयं ही इसे अपने में लीन कर लेते हैं। **भृंगी** किसी कीट को पकड़कर अपने रहने के स्थान पर उसे बंद कर लेता है। कीड़ा उसी का चिंतन करते-करते तद्रूप हो जाता है। उसी प्रकार साधक को भी परमात्मा का ही चिंतन करते-करते परमात्मा के रूप में स्वयं को परिवर्तित कर लेना चाहिए। इन सब सीख देने वालों में **बालक** भी महत्त्वपूर्ण रहा। उसने मुझे निर्दोष, निष्कलुष और निर्लेप होना सिखाया। विवेक और वैराग्य की शिक्षा देते रहने के कारण **अपना यह शरीर** भी गुरु है। यद्यपि यह शरीर अनित्य है तो भी इससे परम पुरुषार्थ का लाभ हो सकता है।"

श्रीमद्भागवत पुराण के एकादश स्कंध में दत्तात्रेय के इन चौबीस गुरुओं की कथा का विस्तार से पूर्ण वर्णन किया गया है। इस आख्यान का प्रतिपाद्य मर्म-रहस्य यही है कि व्यक्ति यदि ज्ञान पाना चाहे, तो उसके लिए आवश्यकता केवल तीव्र लगन एवं परिष्कृत अंतःकरण की है। ऐसा होने पर प्रकृति का प्रत्येक घटनाक्रम कुछ-न-कुछ सिखावन देता रहता है। जीवन में जागरूक होना, ग्रहणशील होना—ज्ञानप्राप्ति का सहज उपाय है। इस संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए केवल गुरुदीक्षा लेने भर से काम नहीं चलता। इसलिए शिष्य में भी सोचने, समझने और निरंतर सीखते रहने की सामर्थ्य होनी चाहिए। ऐसा होने पर चारों ओर घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनाएँ भी कुछ-न-कुछ ज्ञान देती रहती हैं।

शिष्य और साधक यदि अपनी दृष्टि को सूक्ष्म और ग्राह्य बनाएँ तो उनके चारों ओर ब्रह्मविद्या का विश्वविद्यालय खुला पड़ा है। प्रकृति ने अपनी प्रिय संतानों के लिए अपने ही आँगन में **ब्रह्मविद्या का ज्ञानमंदिर** खोल रखा है। अतः इस गुरु पूर्णिमा के अवसर पर इस प्रकट सत्य की अनुभूति करके नवीन ज्ञानदीक्षा प्राप्त कर ब्रह्मविद्या के पाठ सीखने के लिए तत्पर हों। ❑

नवनिर्माण अपने युग का अति महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्यक्रम है। इसे संपन्न करने के लिए भावनाशीलों का उद्देश्यपूर्ण गठन एक छत के नीचे होना चाहिए। प्रज्ञा परिवार इस बार ऐसी ही छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में अपनी समवेत स्थिति प्रकट करने जा रहा है। इसे बड़ा कदम माना जाना चाहिए और आशा की जानी चाहिए कि व्यक्तित्वों की प्रखरता प्रकट होगी और समाज के नवनिर्माण की प्रक्रिया द्रुत गति से आगे बढ़ चलेगी। —*परमपूज्य गुरुदेव*

▶युवाक्रांति वर्ष◀

जो जैसा करेगा, वो वैसा भरेगा

ज्येष्ठ मास अपनी पूरी प्रचंडता पर था। सूर्य का ताप आसमान से मानों आग बनकर बरस रहा था। पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, जीव-जंतु सभी त्राहिमाम् कर रहे थे। धरती वीरान-सी हो गई थी। आग लगाने वाली लू में बाहर निकलना लगभग असंभव-सा था। परंतु प्रचंड पुरुषार्थ के धनी किसान इस झुलसती-चिलचिलाती धूप में भी अपने हल चला रहे थे। कहते हैं कि प्रचंड पुरुषार्थ व आत्मबल हो, तो प्रकृति भी नतमस्तक होकर मार्ग दे देती है। सभी किसानों ने समय पर अपने खेत की जुताई व बुआई की थी; क्योंकि उन्हें पता था कि यदि अब नहीं बोया तो फिर काटेंगे क्या? जो बोता है, वही तो काटता है। जो जैसा बोता है, वह वैसा ही काटता है।

सावन आया। सावन की घनघोर घटाएँ आसमान में छाने लगीं। मूसलाधार बारिश होने लगी। धरती ने जी भरकर अपनी प्यास बुझाई व चारों तरफ हरियाली छाने लगी। देखते-देखते खेतों में पौधे लहलहा उठे और इसे देखकर किसानों के हृदय भी उमग उठे। समय आने पर सबने फसल काटी और आनंदित हुए। वास्तव में किसान के खेत की तरह यह संपूर्ण विश्व-ब्रह्मांड भी भगवान का खेत ही तो है। इस खेत में हर मनुष्य अपने कर्मों की खेती करता है। जो इस खेत में आम बोता है, उसे समय आने पर हजारों आम मिल जाते हैं और इसी प्रकार जो बबूल बोते हैं, उन्हें समय आने पर हजारों काँटे स्वत: ही मिल जाते हैं।

इस प्रकार अच्छे व बुरे कर्मों की खेती सदा चलती रहती है। कोई व्यक्ति इस खेत में सत्कर्मों के बीज बोता है तो कोई बुरे कर्मों के। किसी के जीवनरूपी खेत में दु:ख की फसल लहलहाती है तो किसी के जीवन में सुख-सौभाग्य व समृद्धि की फसल लहलहा उठती है। इसमें प्रकृति व ईश्वर का कोई दोष नहीं, कोई हस्तक्षेप नहीं; क्योंकि हमने जो कुछ बोया है, हमें समय आने पर उसे ही काटना पड़ता है, भोगना पड़ता है। इसलिए कहा गया है कि जो जैसा बोता है, वह वैसा ही काटता है। बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय।

अत: समझदारी इसी में है कि हम सदा सत्कर्मों की खेती करें व अपने जीवन को कुशल किसान की तरह सुख-सौभाग्य व समृद्धि से भर लें। भले ही आज हम अच्छी स्थिति में न हों, परंतु यदि आज से और अभी से ही हमने सत्कर्मों के बीज बोने शुरू कर दिए तो हमारे जीवन में भी आशा का, उत्साह का, उमंग का नया विहान, नया सवेरा हो सकता है। देव व शोभना की प्रस्तुत कहानी भी हमें यही संदेश देती है।

देव नाम के एक लड़के को स्कूल की फीस भरने के लिए दर-दर भटकना पड़ता था। जीविका के लिए भी वह फेरी लगाकर कुछ सामान बेचा करता। एक दिन उसका कोई सामान नहीं बिका और उसे भूख लगने लगी; जो धीरे-धीरे असह्य हो उठी। उसने तय किया कि अब वह जिस घर भी जाएगा, वहाँ खाना माँग लेगा। उसने एक घर का दरवाजा खटखटाया; तो एक लड़की बाहर आई। उसे देखकर देव घबरा गया और खाने के बजाय पानी माँग लिया। लड़की ने भाँप लिया कि वह भूखा है। इसलिए वह दूध से भरा एक बड़ा गिलास ले आई। लड़के ने दूध पी लिया। दूध पीने के बाद देव ने पैसों के बारे में पूछा। लड़की ने कहा—पैसे किस बात के? आप चाहे यहाँ मेहमान की तरह आए हों अथवा जरूरतमंद की तरह, दोनों ही स्थिति में पैसे लेना नहीं बनता।

धन्यवाद देकर देव चला गया। वर्षों बाद वह लड़की गंभीर रूप से बीमार पड़ी। स्थानीय चिकित्सक सफल नहीं हुए तो शहर के बड़े अस्पताल में उसे भेजा गया। विशेषज्ञ चिकित्सक को मरीज देखने बुलाया गया। उन्होंने उस लड़की को देखा और तय कर लिया कि उसकी जान बचनी ही चाहिए। उनकी मेहनत रँग लाई। लड़की की जान बच गई। चिकित्सक ने अस्पताल के कार्यालय से लड़की के इलाज का बिल मँगवाया। इस बिल के कोने में एक नोट लिखा और उसे उस लड़की के पास भिजवा दिया। बिल देखकर लड़की को लगा कि बीमारी से वह बच गई, पर बिल कैसे भरेगी?

उसने घबराते हुए बिल को देखा तो उसकी दृष्टि बिल के कोने में कलम से लिखे गए एक संदेश पर गई। वहाँ पर लिखा था—आपको भुगतान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक गिलास दूध द्वारा इस बिल का भुगतान आपके द्वारा, वर्षों पहले किया जा चुका है। नीचे डॉक्टर देव के हस्ताक्षर थे। उसे भान हुआ कि वर्षों पहले उसने जिस बालक को एक गिलास दूध देकर उसकी सहायता की थी, उसी ने आज उसे इतने बड़े संकट से मुक्त किया था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि समय आने पर हमें, हमारे सत्कर्मों का फल निश्चित ही मिलता है। हाँ, हमें कुशल किसान की तरह सत्कर्मों की खेती निरंतर करनी चाहिए। साथ ही फलप्राप्ति के लिए अधीर भी नहीं होना चाहिए।

इस संदर्भ में, संत कबीरदास जी ने कितना सटीक दोहा कहा है—

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥

अर्थात बीज बोते ही हमें फलप्राप्ति नहीं हो सकती। भले ही माली किसी पौधे को सौ घड़े पानी से सींचे, पर उसमें फल तो समय आने पर ही लगेंगे, पहले नहीं। हाँ, हमें किसी की सेवा का, सहयोग का जब भी मौका मिले तो उसे अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। ईसामसीह अपने शिष्यों से कहा करते थे कि यदि किसी की भलाई, सेवा का मौका मिले तो उसे बाएँ हाथ से ही कर लो, पता नहीं दाएँ हाथ से करने की प्रतीक्षा में अवसर हाथ से ही न निकल जाए। संत कबीर ने भी प्रस्तुत पंक्तियों में यही बात कही है—

काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब।

अतः हमें सत्कर्मों की खेती करनी चाहिए और इस सिद्धांत को जीवन में अपनाना चाहिए। ❑

एक खेत में कुछ मजदूर निराई-गुड़ाई का काम कर रहे थे। एक घंटा काम करने के बाद वे सब बैठकर सुस्ताने और गप्प हाँकने लगे। खेत के मालिक ने उनसे कहा तो कुछ नहीं, परंतु खुद खुरपी लेकर काम करने लगा। मजदूरों ने अपने मालिक को काम करते देखा तो शरमिंदा हुए और दौड़कर काम में जुट गए। दोपहर हुई। यह देखकर मालिक, मजदूरों के पास गया और बोला—''भाइयो, काम बंद कर दो और खाना खा लो, आराम कर लो।''

मजदूर खाना खाने चले गए और शीघ्र ही थोड़ा आराम करने के बाद फिर काम पर आकर डट गए। शाम को छुट्टी के समय पड़ोसी खेत वाले ने देखा कि उसका काम तो हम से दो गुना ज्यादा हुआ है। वह बोला—''भाई! तुम मजदूरों को छुट्टी भी देते हो और डाँटते-फटकारते भी नहीं, तब भी तुम्हारा काम मुझसे ज्यादा होता है, जबकि मैं मजदूरों को छुट्टी नहीं देता और हर समय डाँटता भी हूँ, तब भी मेरा काम कम ही हो पाता है।'' सज्जन स्वभाव वाला खेत का मालिक बोला—''भाई! काम लेने की नीति में मैं सबसे पहले स्नेह एवं सहानुभूति को स्थान देता हूँ। दूसरा, मैं स्वयं उनके काम-काजों में जुटता हूँ। इसीलिए मजदूर पूरा जी लगाकर काम करते हैं, इससे काम ज्यादा भी होता है और अच्छा भी। यह अनुशासन थोपने की नहीं, सहजीवन-सहकार की ही चमत्कारी परिणति है।''

▶युवाक्रांति वर्ष◀

भारतीय आजादी के समर्पित साधक



किसना! काम बहुत बाकी है। देखो, रोगियों की कितनी लंबी लाइन लगी है। इन सबको दवा देने के लिए हमें दवा की आवश्यकता पड़ेगी और हमारे पास अभी दवा की कमी है। ऐसा करना तुम अपने मजदूर साथियों को ले आना, ताकि आज रात हम दवा बना सकें। बहुत सारी भस्मों का निर्माण करना है, जिसके लिए समय एवं श्रम, दोनों की जरूरत है। इसके अलावा ज्वर, सरदी, खाँसी, अम्लपित्त, दस्त आदि बीमारियों के लिए भी चूर्ण बनाना है। ध्यान रहे, थोड़ी लापरवाही से भी रोगियों का नुकसान हो सकता है—वैद्य लेखराम, किसना से ये सब बातें कह रहे थे।

किसना धोती, गाढ़े का कुरता और सिर पर हरे रंग की पगड़ी धारण किए हुए था। उसको लेखराम वैद्य के औषधालय में आए ज्यादा दिन नहीं हुए थे, परंतु अपनी मेहनत और लगन से उसने औषधि बनाने के सारे गुर सीख लिए थे। किसना अपनी धुन का इतना पक्का था कि खाना-पीना छोड़कर दवा बनाने का काम करता रहता था और दवाओं को रोगियों में वितरण का काम भी करता था। वैद्य जी का औषधालय रोहतक के बीच बाजार में स्थित था। उनका मकान अलग था। इसके अलावा औषधालय एवं आवास के अतिरिक्त एक कच्चा मकान किराये पर लिया गया था, जहाँ पर लेखराम एवं किसना चूर्ण, भस्म आदि का निर्माण करते थे।

वैद्य लेखराम, रोहतक के निवासी थे और उन्होंने लाहौर के आयुर्वेदिक कॉलेज से वैद्य की उपाधि प्राप्त की थी। वे शहर के एक प्रतिष्ठित वैद्य थे। उनकी दवाएँ अत्यंत प्रभात्री हुआ करती थीं। वे वैद्य होने के साथ-साथ एक अच्छे इनसान भी थे। रोगियों से ज्यादा पैसे नहीं लेते थे और गरीब रोगियों को तो वे निःशुल्क औषधि भी दे दिया करते थे। उनकी दवा से रोगी शीघ्र ठीक हो जाते थे, इसलिए उनके औषधालय में हर समय बहुत भीड़ रहती थी। लेखराम का व्यक्तित्व आकर्षक था। वे अत्यंत धैर्यवान थे और अपना कार्य बड़ी ही ईमानदारी एवं जिम्मेदारी से करते थे।

सभी रोगी लेखराम के साथ-साथ किसना को भी धन्यवाद देते थे; क्योंकि वह भी उतना ही संवेदनशील था। वह भी दूसरों के दुःख से द्रवित हो उठता था। इसलिए कोई भी रोगी उसे भूल नहीं पाता था। कई रोगी तो केवल उससे ही मिलने के लिए आते थे। इन सारे गुणों के साथ-साथ किसना एक मजबूत इरादों वाला इनसान था। एक दिन जिस मकान में किसना, वैद्य लेखराम की औषधियाँ बनाने में सहायता करता था, उसी मुहल्ले में पुलिस की सरगरमी देखी गई। उन दिनों भारत में अँगरेजी शासन था और वे सारे पुलिस वाले किसी क्रांतिकारी की तलाश में थे। पुलिस के उस मुहल्ले में आने के उपरांत दो दिन तक वैद्य लेखराम का दवाखाना बंद रहा और वैद्य लेखराम व किसना, दोनों ही दो दिनों तक दिखाई नहीं पड़े। यहाँ तक कि वैद्य लेखराम की पत्नी को भी नहीं पता था कि वे कहाँ गए हैं। दो दिन बाद वे दोनों ही वापस लौट आए।

दरअसल लेखराम के साथ जो किसना था, वह क्रांतिकारी यशपाल थे और वे वैद्य लेखराम के साथ उस कच्चे मकान में बमों का मसाला तैयार करते थे। इस कार्य को यशपाल और लेखराम इतनी सावधानी के साथ करते थे कि किसी को भी पता नहीं चल पाता था। यशपाल एक ऐसे स्थान की तलाश कर रहे थे, जो दिल्ली और लाहौर का विकल्प हो और जहाँ बम बनाने का कारखाना प्रारंभ किया जा सके। इस कार्य से जुड़ी हुई एक समस्या यह थी कि उन्हें एक ऐसा व्यक्ति चाहिए था, जो इस खतरनाक एवं जोखिम भरे काम में सहायक और विश्वसनीय सिद्ध हो सके। यशपाल ने अपने साथी भगवती चरण के सामने अपनी समस्या रखी थी। भगवती चरण ने उनकी इस समस्या का हल खोज निकाला था।

भगवती चरण ने कहा—''यशपाल! रोहतक में लेखराम नाम का मेरा एक मित्र है। तुम्हारे इस कार्य के लिए वह अत्यंत उपयुक्त एवं भरोसेमंद साबित होगा।'' यशपाल ने कहा—''क्या आपने परख लिया है कि लेखराम हमारे गोपनीय काम में अंत तक साथ दे

►युवाक्रांति वर्ष◄

सकेगा?'' भगवती चरण ने कहा—''लेखराम अत्यंत भरोसेमंद एवं कर्मठ है। वह भी राष्ट्र के लिए अपने आप को समर्पित करने के लिए तत्पर है। उसने मुझे कई बार अपनी इस इच्छा से अवगत कराया है। मैंने उससे कहा कि सही समय की प्रतीक्षा करो और वह समय आ गया है। अब तुम दिल्ली पहुँचो और मैं स्वयं रोहतक जाकर लेखराम को दिल्ली लाऊँगा और तुमसे परिचय कराऊँगा।''

यशपाल और भगवती चरण ने बम का मसाला बनाने के काम में आनी वाली सामग्री, थोड़ी-थोड़ी करके अलग-अलग स्थानों से खरीदी, जिससे किसी को संदेह न हो। सामग्री लेने के बाद भगवती चरण एक दिन रोहतक चले गए और वैद्य लेखराम को अपने साथ दिल्ली लेकर आ गए और दोनों का परिचय करा दिया। वहाँ पर तय हुआ कि यशपाल, लेखराम के साथ नौकर बनकर रहेंगे। इस प्रकार वे किसना बनकर उनके साथ अपने कार्य को अंजाम देने लगे। दिन में वे दोनों रोगियों की सेवा करते थे और रात में राष्ट्रसेवा के लिए बम का मसाला बनाते थे। दोनों ने रोहतक के इस कारखाने में बमों का काफी मसाला तैयार कर लिया था और उसे बमों में भरने के लिए अन्य केंद्रों पर भेज दिया करते थे। यह मसाला उन बमों में भी था, जो वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को उड़ाने के लिए रखे गए थे।

एक दिन लेखराम को दिल्ली बुलाया गया। लेखराम अपने काम के प्रति लगन और निष्ठा से आजाद चंद्रशेखर जी की नजरों में भी आ चुके थे। लेखराम क्रांतिकारियों के बीच प्रसिद्ध होने लगे थे, परंतु वे बाहर एक वैद्य के रूप में ही जाने जाते थे। दिल्ली में उनको मोटर चलाना सिखा दिया गया था। लेखराम का परिचय आजाद जी से हुआ। आजाद ने कहा—''लेखराम! तुम्हें हम एक महत्त्वपूर्ण काम दे रहे हैं। हम दिल्ली के गाडोदिया स्टोर पर धावा बोलेंगे और तुमको भी हमारे साथ रहना है।'' इस पर लेखराम ने कहा—''यह तो मेरे लिए गर्व की बात होगी।''

आजाद एवं उनके साथी मोटर में बैठ गए और लेखराम गाड़ी चला रहे थे। तब आजाद ने कहा—''हमारे लिए व्यक्तिगत सुख-दु:ख कभी भी महत्त्वपूर्ण नहीं होने चाहिए। हम लोग जिस कार्य के लिए सिर पर कफन बाँधकर बढ़ चुके हैं, वहाँ अपनी क्षुद्र इच्छाओं का कोई स्थान नहीं है। हमारे सामने हमेशा हमारा लक्ष्य होना चाहिए और वह लक्ष्य है—राष्ट्र को अँगरेजों की दासता से मुक्त करना।'' उस दिन का अभियान सफल रहा और कोई पकड़ा भी नहीं गया। चंद्रशेखर आजाद स्वयं भी बहुत अच्छे चालक थे, पर उस दिन अच्छी कार चलाने के लिए उन्होंने लेखराम की खूब प्रशंसा की।

भारत के आजाद हो जाने के बाद लेखराम ने कहा—''आजाद जी द्वारा दिया गया वह कार्य मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। वह किसी भी उपासना से कम नहीं था। उस कार्य के कारण ही मेरा जीवन धन्य हो पाया।'' ❑

एक बार कुछ अँगरेज शिक्षाविद् बनारस आए। उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय देखने की इच्छा प्रकट की। मालवीय जी ने उन्हें विश्वविद्यालय की एक-एक इमारत बड़े मनोयोग से दिखाई और विस्तार से सबके बारे में बताते रहे। केवल एक कॉलेज की इमारत दिखानी बाकी रह गई थी। चूँकि मालवीय जी को किसी कार्यक्रम में जाना था, अत: उन्होंने प्रोफेसर शेषाद्रि से कहा कि वे उन अतिथियों को बची हुई इमारत दिखा दें। प्रोफेसर शेषाद्रि बोले—''अब तो शाम हो गई है। शायद वह इमारत बंद हो गई हो।'' फिर भी मालवीय जी बोले—''कोई बात नहीं, वहाँ पर चपरासी तो होगा ही।'' प्रोफेसर शेषाद्रि फिर बोले—''संभवतया वहाँ चपरासी भी न हो।'' मालवीय जी उसी धैर्य के साथ बोले—''कोई बात नहीं, ये लोग काँचों से भीतर झाँककर ही देख लेंगे। आप इन्हें वहाँ जरूर ले जाएँ।'' मालवीय जी और प्रोफेसर शेषाद्रि की बात सुन रहे उन शिक्षाविदों में से एक ने कहा—''अब हमारी समझ में आ गया कि इतने बड़े विश्वविद्यालय का निर्माण कैसे हुआ होगा। ऐसा कहकर उन्होंने मालवीय जी के धैर्य की प्रशंसा की।''



पर्व विशेष (गुरु पूर्णिमा)

आत्मा का संबंध है, गुरु-शिष्य का संबंध

गुरु पूर्णिमा के साथ भारत की प्राचीन परंपरा, गुरु महिमा व गुरुओं की परंपरा जुड़ी हुई है। कह नहीं सकते कि अपने देश में गुरु पूर्णिमा कब से मनाई जा रही है, लेकिन यह सच है कि भारत की संस्कृति जितनी प्राचीन है, गुरु-परंपरा, गुरु का ज्ञान, गुरु की महिमा भी उतनी ही प्राचीन है। गुरु पूर्णिमा को महर्षि व्यास की स्मृति में 'व्यास पूर्णिमा' के रूप में मनाया जाता है और इस वर्ष गुरु पूर्णिमा/ व्यास पूर्णिमा ९ जुलाई, रविवार के दिन है।

महर्षि व्यास ने भारतवर्ष के इतिहास में पहली बार समस्त संचित ज्ञान का संकलन, संपादन, लेखन आदि संपन्न किया था। इस तरह उन्होंने भारत को समृद्ध साहित्य, समृद्ध विचार, समृद्ध ज्ञान का भंडार दिया। उस ज्ञान को पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रसारित करने का कार्य गुरु-परंपरा ने किया। गुरु-परंपरा ने भारत को सद्विचार दिए, सुविचार दिए, सद्ज्ञान दिया, जीवन जीना सिखाया। जैसे एक साँचा होता है और उससे अनेक ढाँचे ढल जाते हैं। अगर सही साँचा हो तो कच्ची मिट्टी उसमें आकार-प्रकार पाती है। गुरु का जीवन भी वैसा ही एक साँचा होता है, जिसमें अनेक आकार-प्रकार गढ़े जाते हैं, उनके शिष्यों के रूप में अनेक व्यक्तित्व तैयार होते हैं।

संबंधों की जब हम बात करते हैं कि संसार में संबंध कैसे होते हैं? तो कुछ संबंध शरीर से जन्म लेते हैं, जैसे—माता-पिता का संबंध, भाई-बहन का संबंध। कुछ संबंध होते हैं, जो भावनाओं से जन्म लेते हैं, जैसे—पति-पत्नी का संबंध, मित्र का संबंध, इन संबंधों का आधार भावना है। लेकिन कुछ संबंध ऐसे होते हैं, जिनमें किसी तरह का संसार और सांसारिकता नहीं है, ये आत्मिक संबंध होते हैं, ये आत्मा की प्रखरता, पावनता से जन्म लेते हैं। जैसे गुरु-शिष्य का संबंध, यह सांसारिक संबंध नहीं है, यह आत्मिक संबंध है, आध्यात्मिक संबंध है।

उपनिषदों की परंपरा भारत में जो पनपी, उपनिषद् जो रचे गए, कहे गए, वो गुरु-शिष्य के बीच पनपे। गुरु के चरणों में बैठ करके शिष्य ने जो ज्ञान ग्रहण किया, उसको उपनिषद् कहा गया, यानी पास बैठ करके ग्रहण किया गया ज्ञान। गुरु जब शिष्य के पास बैठता है, शिष्य जब गुरु के पास बैठता है, गुरु के सान्निध्य में बैठता है, तो स्वाभाविक रूप से उपनिषद् रचे जाते हैं। आधुनिक युग में भी कई बार ऐसा हुआ।

दक्षिणेश्वर के संत श्री रामकृष्ण परमहंस, गंगा तट पर मंदिर में बैठते थे और उनके पास उनके शिष्य आते थे, कई उनमें अविवाहित थे तो कई उनमें गृहस्थ थे। कई बुजुर्ग थे, पारिवारिक जन थे, कई समाज के प्रतिष्ठित लोग थे, ऐसे लोग उनके पास आते थे, पास बैठते थे, हलकी-फुलकी हँसी, वार्तालाप और फिर ज्ञान का प्रवाह, अलौकिक ज्ञान बहता था। मास्टर महाशय उनके एक शिष्य हुए हैं, उन्होंने इसको संकलित किया है—श्री रामकृष्ण वचनामृत नाम से।

श्री अरविंद के पास कुछ गिन-चुने शिष्य थे, जिनके साथ वे साँझ के समय, एकांतवास में भी मिलते थे, नीरद वरण, नलिनीकांत, मणिलाल—ऐसे ही कुछ लोग थे। कई तरह की चर्चाएँ, वार्ताएँ होती थीं और उनमें बड़ा गूढ़ ज्ञान, अंतर्ज्ञान निकलता था, बाहर आता था। नीरद वरण अच्छे चिकित्सक थे, डॉक्टर थे, एम०डी० डॉक्टर थे, उन्होंने इसे संकलित किया है, 'इवनिंग टॉक' के नाम से।

गुरु, शिष्य को संपूर्ण रूप से जानता है। यही एक ऐसा संबंध है, जहाँ व्यक्ति संपूर्ण रूप से जाना जाता है। बाकी लोग जानते हैं, बड़े आधे-अधूरे मन से, बड़े सतही तौर से। माँ अपने बच्चे को जानती है, लेकिन पूरा नहीं जान पाती, जैसे—उसका बच्चा जब युवक होता है और उसका भिन्न व्यक्तित्व प्रकट होता है तो माँ को लगता है कि हमने जिस बच्चे को पाला था, क्या वह यही है? पति-पत्नी का संबंध बड़ा प्रगाढ़ होता है, वे एक-दूसरे को जानते हैं, लेकिन कई बार ऐसे अनोखे रूप एकदूसरे के सामने आते हैं कि लगता है कि हम एक-दूसरे से अपरिचित हैं। एकमात्र गुरु-शिष्य का संबंध ऐसा है, जिसमें गुरु शिष्य को पूरी तरह से जानता है। उसे शरीर के रूप में नहीं, व्यक्तित्व के रूप में जानता है,

केवल सतह को नहीं जानता, गहराई को जानता है, उसके चित्त को जानता है, संस्कारों को जानता है। वर्तमान जन्म के साथ जन्म-जन्मांतरों को जानता है।

गुरु पूर्णिमा आषाढ़ की पूर्णिमा तिथि को आती है। पूर्णिमा में एक भाव छिपा हुआ है—पूरा देने का भाव, पूरा पाने का भाव। कबीर कहते हैं अपने संदर्भ में—**कहत कबीर मैं पूरा पाया**। जो पूरा देता है, वह पूरा पाता है। जो देने में संकोच करता है, उसे पाने में भी मुश्किल खड़ी होती है। हम संसार में देने में कम विश्वास करते हैं, पाने में थोड़ा अधिक विश्वास करते हैं। जो देना नहीं जानते, उन्हें पाने में भी चूक हो जाती है। श्री अरविंद ने लिखा है—तीव्र अभीप्सा, सतत समर्पण, पूर्ण निवेदन—यही गुरु-शिष्य के बीच में संबंधों के सूत्र हैं।

गुरु-शिष्य संबंध में गुरु पहले माँगते हैं, जो सच्चा शिष्य है वो देता है और पा लेता है। एक प्रसंग पांडवों के वनवासकाल का है, द्रौपदी भी उनके साथ थी। उस समय अपने दस हजार शिष्यों के साथ ऋषि दुर्वासा आ गए । दुर्योधन ने पांडवों के साथ एक क्रूर मजाक किया था। जानता था कि दुर्वासा जल्दी कुपित हो जाते हैं, जल्दी नाराज हो जाते हैं, इसलिए उसी ने ऋषि दुर्वासा को उनका आतिथ्य ग्रहण करने के लिए भेजा था। पांडवों के पास एक अक्षय पात्र था। जो सूर्य की आराधना से द्रौपदी को मिला था। अक्षय पात्र में एक बार जो भोजन पक जाता था तो फिर चाहे जितने लोग उसे खाएँ, वो रिक्त नहीं होता था, लेकिन अंत में जब अक्षय पात्र धोकर रख दिया जाता था, तो फिर कुछ नहीं हो सकता था, फिर उस दिन के लिए अक्षय पात्र खाली होता था, अगले दिन फिर जब उसमें भोजन पकाया जाता था, तो फिर वह अक्षय हो जाता था। इसमें एक दिन के लिए व्यवस्था थी। देवों ने यह व्यवस्था युधिष्ठिर को, द्रौपदी को दी थी। दुर्योधन ने ऋषि दुर्वासा से कहा था कि आप तो दोपहर में जाना, जब पांडव लोग खाना खा चुके हों, ताकि आपको खिलाने में उन्हें संकोच न हो। दुर्योधन ने कुटिल चाल चली थी।

दुर्वासा पहुँच गए, सही समय पर—दुर्योधन के बताए हुए समय पर पहुँचे। एकाएक मुसीबत खड़ी हो गई। दुर्वासा ने कहा कि बहुत भूख लगी है, मैं स्नान करने नदी पर जा रहा हूँ अपने शिष्यों के साथ। हजारों शिष्य थे। और लौट करके खाना खाऊँगा। द्रौपदी ने भगवान को पुकारा। भगवान आए और आते ही कहा कि द्रौपदी मुझे भी बड़ी भूख लगी है। कुछ है तुम्हारे पास, मुश्किल में पड़ गई द्रौपदी और बोली—"इसी मुश्किल को हल करने के लिए तो हमने आपको बुलाया था।" भगवान बोले—"अरे भई, बरतन में देखो, अगर कहीं कुछ लगा हो तो।" अक्षय पात्र ले आई, कहीं कुछ था ही नहीं उसमें। भगवान ने ढूँढ़ा, चावल के दो कण पड़े थे। भगवान ने खा लिए, कहते हैं कि उसी से दुर्वासा तृप्त हो गए। चावल के दो कण के बदले उन्होंने दुर्वासा और उनके शिष्य समुदाय को तृप्ति दे दी। कभी भगवान आते हैं ज्ञान देने, पहले माँगते हैं दो कण। गुरु आते हैं जीवन में, दो कण माँगते हैं। वो दो कण क्या हैं? एक कण आसक्ति का है और एक कण अहंकार का है। गुरु स्वरूप भगवान इसे माँग लेते हैं।

महाराज बलि, अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, एक के बाद एक यज्ञ हुए जा रहे थे, निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ हो चुके थे, सौवाँ अश्वमेध यज्ञ चल रहा था। भगवान पहुँचे, वामन रूप ले करके। छोटा रूप ले करके। बलि से माँगा कि तीन पग भूमि चाहिए हमें। बलि ने देखा वामन को, देखकर मुस्कराए, गुरु शुक्राचार्य ने उन्हें रोका, वो बोले—"देख लो, क्या दे रहे हो? कौन है सामने? देख लो। ये वामन नहीं है, नारायण आए हैं। पता नहीं कितनी परीक्षा लेंगे।" बलि ने कहा—"महाराज! हमारा सौभाग्य कि भगवान हमारे दरवाजे आए हैं।" फिर शुक्राचार्य ने उन्हें नहीं रोका। गुरु का काम शिष्य को भगवान से मिलाना होता है। भगवान आ गए धरती पर, भगवान आ गए बलि की भूमि पर। "भगवान हम आपको देते हैं"—तीन पग दिया। बलि आसक्तिरहित थे, कर्त्तव्यपरायण थे, लेकिन कहीं कुछ देने का अहंकार बचा हुआ था। दो पग पूरे हो गए, भगवान बोले—तीसरा पग कहाँ रखें। महाराज! मेरे सिर पर रखो, अहंकार की जड़ यही है। तीसरे पग में बलि ने अहंकार दिया, भगवान ने अहंकार लिया।

गोस्वामी जी कहते हैं—**बंदउँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।** गुरु रूप में, नर रूप में नारायण, हमारे बीच में विचरण करते हैं। इस रूप में भगवत्ता हमारे बीच विचरण करती है, ईश्वरीयता विचरण करती है, लेकिन हम भगवान को देख नहीं पाते—आँखों से। कहते हैं कि भगवान निराकार हैं। निराकार भगवान जब साकार रूप लेते हैं तो गुरु के रूप में आते हैं, हमको सिखाने-बताने, हमको अपने से मिलाने, हमारी कमियाँ दूर करने, हमारी कमजोरियाँ दूर करने

आते हैं। बस, हमको इसके लिए एक कदम बढ़ाने की जरूरत है, वे हमको भाँति-भाँति से जगाते हैं, भाँति-भाँति से होश में लाते हैं। हमारा जीवन मूर्च्छा में खोया हुआ है। हम मूर्च्छित अवस्था में रह रहे हैं, होश नहीं है हमें। जो संबंध कच्चे हैं, उन धागों से हम बँध गए हैं। जो संबंध पक्के हैं, उन्हें हम भूल गए हैं। जो संबंध आत्मा का है, जो संबंध परमात्मा का है, वह हमें स्मरण नहीं रहा।

गुरु हमें बताते हैं, चेताते हैं। हमारे जीवन का स्मरण कराते हैं, हमारी आत्मा का स्मरण कराते हैं। हमें बताते हैं कि मानवीय चेतना का शिखर क्या है? ज्ञान का शिखर क्या है? बोध का शिखर क्या है? अपने व्यक्तित्व से, अपने जीवन से गुरु हमारे सामने उदाहरण रखते हैं। एक ऐसा जीवन एक ऐसा व्यक्तित्व, एक ऐसी चेतना की पावनता, जो मनुष्य जीवन में सुलभ नहीं है, दुर्लभ है, मुश्किल है, लेकिन गुरु भरोसा दिलाते हैं कि देखो, हमारे साथ हुआ, तुम्हारे साथ भी हो सकता है। हमने पाया, हमने जाना, तुम भी जान सकते हो और इसके लिए भागने की जरूरत नहीं है, जागने की जरूरत है।

ज्ञान के दो ही द्वार होते हैं, बुद्धि का द्वार, प्रेम का द्वार। बुद्धि के द्वार से हम संसार को जानते हैं और प्रेम के द्वार से हम परमात्मा को जानते हैं, सद्गुरु को जानते हैं। बाहर दिखाई देने वाले हमारे गुरु जब हमारी अंतश्चेतना में, हमारी अंतर्भावना में आसीन हो जाते हैं, प्रतिष्ठित हो जाते हैं तो वे सद्गुरु हो जाते हैं, जब तक उनकी उपस्थिति केवल बाहर है, तब तक वो गुरु हैं, जब उनकी उपस्थिति हमारे जीवन में, हमारे श्वासों में, हमारे हृदय में समा जाती है तो वे सद्गुरु हैं और सद्गुरु के रूप में वो हमसे कभी विलग नहीं होते, कभी भिन्न नहीं होते। ज्ञान के स्रोत के रूप में वो हमारे अंतर में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, भाव स्रोत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, फिर कोई कमी नहीं रहती। जो शिष्य होता है, वो गुरु का सत्य जान पाता है। शिष्यत्व जितना प्रगाढ़ होगा, गुरु की गरिमा-महिमा हमारे जीवन में उतनी ही प्रतिष्ठित होती चली जाएगी और तब गुरु पूर्णिमा हमारे जीवन में सार्थक होगी। ❑

पुंडरीक, भगवान विष्णु के अनन्य भक्त थे। भगवान की पूजा-अर्चना करने के पश्चात वे अपने वृद्ध माता-पिता की अपने हाथों से सेवा किया करते थे। एक दिन भगवान विष्णु, अपने भक्त की निष्काम भक्ति से प्रसन्न होकर उनके घर में प्रकट हुए। उस समय पुंडरीक अपने पिता के चरण दबा रहे थे। भगवान को देख लेने के बाद भी वे पिता की सेवा में संलग्न रहे और उनसे बोले—''प्रभु! मैं इस समय तो पिता जी की सेवा में व्यस्त हूँ। इसको कर लेने के उपरांत आपका आतिथ्य करता हूँ।'' भगवान खड़े-खड़े मुग्ध होकर अपने भक्त की निश्छलता को निहारते रहे।

पुंडरीक को लगा कि भगवान खड़े-खड़े थक गए होंगे तो उन्होंने एक हाथ से चरण दबाते-दबाते, दूसरे हाथ से पास रखी ईंट को फेंकते हुए कहा—''प्रभु! आप इस पर बैठ जाइए। मैं पिता जी के सोते ही आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।'' भगवान विष्णु अपने भक्त की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसी ईंट पर विग्रह के रूप में सदा के लिए विराजमान हो गए। आज भी वहाँ उनके दर्शन के लिए अनेक भक्तों का समागम होता है।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

विचित्र व भीषण प्राकृतिक घटनाएँ

प्रकृति की शक्तियाँ अपार व अपरिमित हैं। हालाँकि प्रकृति इनका प्रदर्शन कभी-कभी ही करती है, लेकिन जब भी करती है, तब भारी तबाही होती है। कुछ ऐसी ही चकित करने वाली घटनाएँ प्रकृति में घट चुकी हैं, जिन्हें जानकर बहुत अचरज होता है। जैसे आकाश से बरसने वाले ओलों का आकार साधारणतया चने या मटर के बराबर होता है, लेकिन सितंबर, १९७० में अमेरिकी शहर कन्सास के निकट बसे एक गाँव में साढ़े सात इंच के ओले गिरे थे, जिनमें से प्रत्येक का वजन करीब एक किलो के बराबर था, पर सौभाग्य से इन ओलों से किसी को शारीरिक हानि नहीं हुई।

इसी प्रकार अप्रैल, १८८८ में मुरादाबाद के निकट स्थित एक गाँव में काफी बड़े आकार के हजारों ओले गिरे, इसमें २४६ लोग मर गए थे। इसी प्रकार १४-१५ अप्रैल, १९२१ में कोलोराडो के निकट स्लिवर नामक स्थान पर लगातार २४ घंटे तक घनी बरफ गिरती रही और करीब १४ घंटे बाद यहाँ की धरती पर दो मीटर ऊँची बरफ की परत चढ़ चुकी थी। आज तक पूरी दुनिया में इतने कम समय में इतनी बरफ कहीं नहीं गिरी।

पूरी दुनिया में आज तक शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो अपने ऊपर बिजली गिरने के बाद भी बच जाए। सन् १९४७-१९७७ के मध्य अमेरिका के पार्क रक्षक रॉय सी. सुलिबान के ऊपर सात बार बिजली गिरी, पर आश्चर्यजनक रूप से वह हर बार जीवित रहे। हाँ, उनके ऊपर बिजली गिरने की वजह से उनके पाँव के अँगूठे के नाखून, भौंह और सिर के बाल अवश्य जल गए।

हरीकेन या प्रभंजन, गरम समुद्र में उठने वाला तूफान है, जो समुद्र के पानी को मथकर रख देता है। १२-१३ नवंबर, १९७० के दिन बाँग्लादेश के तटीय समुद्री इलाके में इतना भयंकर तूफान उठा कि इसने ५ लाख लोगों को लील लिया। २०० किलोमीटर प्रतिघंटे की रफ्तार से उठने वाले इस हरीकेन का उद्गम स्थल हिंद महासागर में था। आज तक पूरी दुनिया में हरीकेन में इतने लोग कभी नहीं मारे गए। इसका नाम था **भोला साइक्लॉन**।

वायु की सबसे तेज गति १२ अप्रैल, १९३४ में पूर्वी अमेरिका में स्थित सफेद पहाड़ियों पर रिकॉर्ड की गई। इसका वेग था—३७१ किलोमीटर प्रतिघंटे। वायु के बवंडर की वजह से सबसे बड़ी दुर्घटना १९४१ में हुई, जब रॉयल आस्ट्रेलियन एयरफोर्स के आठ बमवर्षक विमान तूफानी बवंडर में फँस गए, इन आठ विमानों में से छह विमान बवंडर में फँसकर चूर-चूर हो गए और केवल दो विमान ही सुरक्षित लौट सके। इस तूफान में हवा १०० किलोमीटर प्रतिघंटे की रफ्तार से ऊपर-नीचे आ-जा रही थी। इसी उथल-पुथल की वजह से वे जहाज नष्ट हुए।

३० जून, १९०८ को साइबेरिया (रूस) की तुगास्ता घाटी में विशाल आग का गोला आकर गिरा। आग के इस गोले की वजह से ३५ किलोमीटर के दायरे में सब कुछ जलकर नष्ट हो गया। यही नहीं, गोले के गिरने से धरती इतनी तेजी से काँपी थी कि मीलों दूर खड़े घोड़े भी उछल गए थे। ऐसे ही १३ नवंबर, १८३३ को उत्तरी अमेरिका का आकाश करीब लाखों उल्काओं के कारण चमक उठा था, पर आश्चर्य की बात थी कि कोई भी उल्कापिंड धरती से नहीं टकराया।

१५ मई, १९०० के दिन अमेरिका के शहर कन्सास के निकट मछलियों की बारिश हुई थी। एक व्यक्ति ने इसके बारे में लिखा है कि जब उसके शहर में तेज बारिश के साथ ओले पड़े तो उन ओलों के फटने पर उनमें से मछलियाँ बाहर आईं। अमेरिका के एक किसान ने भी सन् १९३२ में मछलियों के बरसने के बारे में लिखा था। इन मछलियों की संख्या इतनी ज्यादा थी कि घर से लेकर खेत तक, सारे स्थान इन्हीं नन्हीं मछलियों से भर गए थे। इन मछलियों में कई जिंदा भी थीं और जब इन्हें पानी में डाला गया, तो वे काफ़ी दिनों तक जिंदा भी रहीं। इन घटनाओं के अध्ययन के बाद यह

पता चला कि जब समुद्र के भीतर ज्वालामुखी फटता है तो उसके लावे के साथ समुद्र में तैरती मछलियाँ भी सैकड़ों मील दूर जाकर बिखर जाती हैं। ऐसा दक्षिण अमेरिका के अनेक समुद्रतटीय इलाकों में हो चुका है। कई बार समुद्री पानी, गरम जलवायु व हवा के दबाव की वजह से गोल-गोल घूमता हुआ एक खंभे के रूप में ऊपर उठता है और कई बार इसी खंभे के साथ ऊपर उठ गई मछलियाँ भी दूर जा गिरती हैं। कई बार यह जलस्तंभ इतने ऊँचे होते हैं कि ये बादलों तक पहुँच जाते हैं और बादलों में छिपे पानी में यदि ओले बनने लायक ठंढक होती है तो मछलियाँ ओलों के भीतर जम जाती हैं।

कुछ साल पहले जब भारत सहित दुनिया के कई तटीय देशों और शहरों में सुनामी आई, तो इसमें पानी के विशाल जहाज तक खिलौनों की तरह दूर जा गिरे, इससे लोगों को प्रकृति की शक्ति का अंदाजा हुआ। अमेरिका में आए कैटरीना जैसे तूफानों ने जिस तरह व्यापक पैमाने पर तबाही मचाई, उसे देखकर अमेरिका जैसा देश भी हिल गया। इससे पहले भी कई तरह की आपदाएँ आई हैं, इनमें से कई आपदाओं को अचरजकारी माना गया है। जैसे १८ मार्च, १९२५ के दिन अमेरिका के कुछ प्रमुख शहरों, जैसे—इंडियाना, इलिनोए तथा मिसौरी में ऐसा चक्रवात (तेजी से गोल घूमता हुआ वायु का स्तंभ) आया था, जिससे केवल तीन घंटे में ६८९ लोगों की मौत हो गई थी। करीब पाँच सौ फुट चौड़े इस चक्रवात की वायु तरंगें विद्युत-आवेशित थीं और वहाँ वायु करीब २२५ मील प्रतिघंटे की रफ्तार से घूम रही थी।

इस तरह प्रकृति में भूकंप, तूफान, समुद्री तूफान, ज्वार-भाटा, सूखा पड़ना, अत्यधिक वर्षा, हिम वर्षा जैसी घटनाएँ होती रहती हैं। लेकिन कहीं-कहीं ये घटनाएँ आश्चर्यजनक ढंग से इस तरह घटती हैं कि उन पर विश्वास करना सरल नहीं होता। समय-समय पर ऐसी आपदाओं के द्वारा संभवतया प्रकृति हमें यही संदेश देना चाहती है कि हमें प्रकृति के साथ सहकार व सम्मान का दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए अन्यथा यदि प्रकृति अपनी मनमानी पर उतर आई तो किसी भी माध्यम से उसका सामना कर पाना संभव न हो सकेगा। ❑

जो जिस स्थिति में है, अपने लिए ऐसा क्षेत्र चुन सकता है कि कुछ करने का अवसर मिले। गौड़ देश में एक भावनाशील श्रमिक रहता था। जितना कमाता, उतना गुजारे में ही खरच हो जाता। दान-पुण्य के लिए कुछ न बचता। इससे वह दुःखी रहने लगा। मन-ही-मन स्वयं को ही कोसता कि बिना परमार्थ किए परलोक में कैसे सद्गति मिलेगी ? अपनी व्यथा उसने उस क्षेत्र के निवासी मद्रक संत को सुनाई। उन्होंने उसे सलाह देते हुए कहा—''इस क्षेत्र में बहुत से तालाब हैं, पर वे अब समतल हो गए हैं। उनमें गहराई न रहने से पानी भी नहीं टिकता और प्यासे पशु-पक्षी अपनी प्यास बुझाने के लिए दूर-दूर तक जाते हैं। मनुष्यों को भी कम कष्ट नहीं होता। तुम इन तालाबों को जहाँ भी पाओ, वहाँ श्रमदान कर तालाबों का जीर्णोद्धार करते रहो। जिस प्रकार नए मंदिर बनवाने की अपेक्षा पुरानों का जीर्णोद्धार श्रेष्ठ माना जाता है, बच्चे उत्पन्न करने की अपेक्षा रोगियों को सेवा प्रदान करना श्रेयस्कर है, उसी प्रकार तुम श्रमदान के आधार पर तालाबों का जीर्णोद्धार करो और उन्हीं के समीप वृक्ष भी लगाओ।'' किसान श्रमिक के पास अपनी श्रम-संपदा प्रचुर थी, उसी से वह निर्वाह के अतिरिक्त परमार्थ भी अर्जित करने लग गया और संत के दिए निर्देश से परम श्रेय का अधिकारी बना।

वासनाओं के अभाव का सूत्र

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की प्रगाढ़ता और परिपक्वता के परिणाम में विवेकज्ञान का उदय संभव होता है। इसके प्रभाव व प्रकाश में, वासनाएँ तिरोहित होती हैं। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक वासनाएँ चित्त में संगृहीत रहती हैं। विचारों में, भावनाओं में भले इनका हर समय अनुभव न हो, फिर भी बीज रूप में चित्त में संग्रह बना रहता है और अनुकूल परिस्थितियों में अपने आप इनका अंकुरण हो जाता है। तब इनका प्रभाव प्रत्यक्ष व प्रकट में अनुभव होने लगता है।

इस स्थिति को कुछ इस तरह से समझा जा सकता है, जैसे कि ग्रीष्म के कठिन ताप से धरती में हरियाली सूख जाती है। मैदान हरियाली विहीन, घास-पात रहित नजर आने लगते हैं। लेकिन उस अवस्था में भी इनके बीज धरती की मिट्टी में छिपे रहते हैं। वर्षा ऋतु की आद्रता आने पर, वायु और मौसम की अनुकूलता आने पर पुन: इनका अंकुरण व विकास होने लगता है। वासनाएँ भी चित्तभूमि में इसी तरह बीज रूप में छिपी रहती हैं और परिस्थितियों व परिदृश्य की अनुकूलता पाने पर फिर इनका प्रभाव प्रकट होने लगता है।

इस योगकथा की पिछली कड़ी में इसी तत्त्व पर चर्चा की गई थी। इसमें कहा गया था कि वासनाओं की अनादिता है। जीव के जीवन में ऐसा कोई काल नहीं था, ऐसा कोई काल नहीं है और ऐसा कोई काल नहीं होगा, जब वासनाएँ न रही हों। बस, बदलती परिस्थितियों में, बदलते परिदृश्य में इनके रूप में परिवर्तन होता है। तत्त्व वही रहता है, बस, तथ्य बदल जाते हैं। कारण में परिवर्तन नहीं होता, केवल कार्य परिवर्तित होते हैं।

जीव का जीवन किसी भी योनि में हो, उसमें जीने की इच्छा सदा बनी रहती है। उसमें सुखी होने की, सुख भोग पाने की चाहत भी जस-की-तस रहती है। सुख के साधन अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग हो सकते हैं, परंतु इसके बाद भी सुख की चाहत हमेशा हर समय वही बनी रहती है। उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता।

अब अगले सूत्र में योगऋषि पतंजलि वासनाओं के संबंध, संदर्भ और आधार पर अपना मत प्रकट करते हैं—

हेतुफलाश्रयालंबनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ४/११ ॥

शब्दार्थ—हेतुफलाश्रयालंबनैः = हेतु, फल, आश्रय और आलंबन—इनसे; **संगृहीतत्वात्** = वासनाओं का संग्रह होता है, इसलिए; **एषाम्** = इन (चारों) का; **अभावे** = अभाव होने से; **तदभावः** = उन (वासनाओं) का भी (सर्वथा) अभाव हो जाता है।

भावार्थ—हेतु, फल, आश्रय और आलंबन—इनके द्वारा वासनाओं का संग्रह होता है। इन चारों का अभाव होने से वासनाओं का अभाव हो जाता है।

इस सूत्र में सूत्रकार ऋषि ने वासनाओं के संबंध में पहले तो इनके संग्रह होने के चार कारण गिनाए हैं— (१) हेतु (२) फल (३) आश्रय एवं (४) आलंबन। बाद में इन चारों के अभाव से, वासनाओं के अभाव का सत्य-उद्धृत व उद्घाटित किया है। वासनाओं का अनुभव जीवमात्र को होता है। न कोई इनसे वंचित है और न कोई इनसे मुक्त। हाँ, मनुष्य शरीर में, मनुष्य जीवन में इनसे छुटकारे की संभावना अवश्य है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह सूत्र मनुष्यमात्र के लिए ही नहीं, अपितु जीवमात्र के लिए भी हितकर है। विचारशील एवं साधनापरायण जनों के लिए इस पर व्यापक विचार करना न केवल आवश्यक है, बल्कि अनिवार्य भी, ताकि वासना से वंचित होने का उपाय मिल सके।

वासनाओं पर विचार क्रम में सबसे पहले (१) हेतु है। वासना के हेतु के रूप में जीवन-विद्या एवं योग विद्या के विशेषज्ञों व विशारदों ने पंचक्लेशों की चर्चा की है। महर्षि ने योगसूत्र के द्वितीय पाद अर्थात साधन पाद के तीसरे सूत्र में इनका वर्णन किया है— **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः (२/३)।** अर्थात अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पाँचों क्लेश हैं। इन पाँचों के मूल में अविद्या है।

इसे महर्षि इसी द्वितीय पाद अर्थात साधनपाद के चौथे सूत्र में कहते हैं—**अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्(२/४)**। ये पंच क्लेश—जो प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार; इस प्रकार चार अवस्थाओं में वर्तमान रहने वाले हैं, जिनका वर्णन अविद्या *के बाद किया गया है—उनका कारण अविद्या है। अविद्या* से ही अस्मिता तथा बाद में राग, द्वेष व अभिनिवेश *पनपते हैं। इसी से वासनाओं व कर्मों का जाल फैलता है,* जो जीव के जीवन को विविध घटनाक्रमों में उलझाता और बाँधता है। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो जिस तरह क्लेशों का मूल कारण अविद्या है, उसी तरह वासनाओं का मूल कारण भी यही है। अविद्या के नाश होने पर ही वासनाओं के हेतु का नष्ट होना संभव है।

अब दूसरे क्रम में (२) फल है। इन वासनाओं से उपजे शुभ-अशुभ कर्मजाल का फल—जन्म, आयु और भोग के रूप में प्राप्त होता है। इस सत्य को महर्षि ने योगसूत्र के द्वितीय पाद अर्थात साधनपाद के तेरहवें सूत्र में उद्घाटित किया है—**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः(२/१३)** अर्थात क्लेश की जड़ से पनपने वाली वासनाओं और उनसे उपजे कर्मों का फल—जन्म, आयु और भोग के रूप में प्राप्त होता है। जैसी वासनाएँ और जैसे कर्म, उन्हीं के अनुरूप और उसी के अनुकूल होता है जन्म, मिलती है आयु और प्राप्त होते हैं भोग। वासनाओं के अनंत प्रवाह की भाँति ही इनका प्रवाह भी अनादि और अनंत है। न वासनाएँ विराम पाती हैं और न ही जन्म, आयु और भोग का सिलसिला थमता है। यदि जन्म, आयु व भोग के प्रवाह को विराम मिलता है, तो वासनाओं व कर्म को भी विराम मिलना चाहिए।

इसके पश्चात तीसरे क्रम में (३) आश्रय है। वासनाओं के प्रकार कितने भी हों, इनके रूप कितने ही क्यों न हों, लेकिन इनका आश्रय हमेशा ही चित्त होता है। *चित्तभूमि में ही वासनाएँ, संस्कार, कर्म और इनके फल-*भोग संगृहीत रहते हैं। हम स्वयं जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे, इनके संग्रह में बढ़ोत्तरी करते रहते हैं। इनकी प्रकृति के अनुरूप, कालक्रम में इनका परिपाक होता *रहता है और इनका फल-भोग हमारे सामने आता रहता* है, जिसे भोगने के लिए हम विवश होते रहते हैं। इनसे *बचने का उपाय यही है कि वासनाओं का आश्रय—*चित्त, वासनाओं से विहीन हो। न वासनाएँ संगृहीत हों और न ही संस्कार व कर्मराशि, तभी फलभोग से बचा जा सकता है।

इन तीनों के बाद चौथे क्रम में (४) आलंबन है। इसमें हम उन सबकी गणना करते हैं, जिनसे वासना के बीज अंकुरित, पोषित व पल्लवित होते हैं। सभी इंद्रियविषय, शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श इसी में आते हैं। इन्हीं का विस्तृत रूप सुखभोगों के साधनों में प्रकट होता है। अनेक अनुभवों के बाद भी इनकी लालसाएँ नहीं मिटतीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह बढ़ते जाते हैं। साथ ही बढ़ते हैं—कर्मबंधन और इनके दारुण कर्मफल भोग। आलंबन तो प्रकृति में सदा ही उपस्थित हैं और रहेंगे। हाँ, वासनाबीज दग्ध हो जाएँ तो ये सभी आलंबन उन्हें अंकुरित करने में समर्थ न होंगे।

इसी सत्य को सूत्रकार महर्षि—'**एषाम् अभावे तदभावः**' के कथन में व्यक्त करते हैं अर्थात इन चारों का अभाव हो तो वासनाओं का भी अभाव हो जाएगा। इसके लिए इन चारों के मूल, अविद्या के अभाव के प्रयत्न करने पड़ेंगे। यह केवल विवेकज्ञान के प्रकाश से ही संभव है। अर्थात विवेकज्ञान का प्रभाव व प्रकाश बढ़ेगा तो स्वतः ही अविद्या प्रभावहीन हो जाएगी और तब हम वासनाओं के प्रभाव से मुक्त हो सकेंगे। ❑

जॉन डी. रॉकफेलर व्यापार प्रबंधन के एक शैक्षणिक संस्थान में गए। वहाँ विद्यार्थियों को व्यापार, व्यवसाय के संबंध में पढ़ाया जा रहा था। रॉकफेलर ने एक छात्र से पूछा कि बताओ—प्रोमिसरी नोट कैसे लिखा जा सकता है? छात्र ने ब्लैकबोर्ड पर लिखा—मैं इस संस्थान को दस हजार डॉलर देने का वादा करता हूँ और उसके नीचे लिख दिया—हस्ताक्षर, जॉन डी. रॉकफेलर। रॉकफेलर ने उस छात्र की कुशाग्रता से प्रभावित होकर उस राशि का चेक तुरंत काट के दे दिया।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

बच्चों को आत्मनिर्भर भी बनने दें



प्रत्येक माता-पिता को अपने बच्चों के भविष्य की चिंता होती है, बच्चों के पालन-पोषण के लिए वे बहुत सजग भी रहते हैं। लेकिन जब यह सजगता जरूरत से ज्यादा हो जाती है, जिसके कारण बच्चों की स्वतंत्रता ही प्रभावित होने लगती है तो इसे आजकल की भाषा में 'पैराशूट पैरेंटिंग' कहा जाता है। पैराशूट का अभिप्राय एक ऐसी छत्रछाया से है, जो कि सर्वांगीण सुरक्षा प्रदान करना है। यहाँ उस शब्द के प्रयोग का उद्देश्य ऐसे अभिभावकों से है, जो अपने बच्चों को आगे बढ़ाने, उनकी मदद करने के लिए उनके हर कार्यों को स्वयं करना प्रारंभ कर देते हैं, जिससे धीरे-धीरे बच्चों में स्वावलंबन की भावना ही समाप्त हो जाती है। इसलिए आजकल उस तरह की अभिभावकवृत्ति के लिए 'पैराशूट पैरेंटिंग' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है।

'पैराशूट पैरेंटिंग' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सन् १९६९ में डॉ. हेम गिनाट्स की पुस्तक 'बिट्वीन पैरेंट्स एंड टीनेजर्स' में हुआ और फिर यह इतना लोकप्रिय हुआ कि सन् २०११ में डिक्शनरी में भी इसे स्थान देना पड़ा। पैराशूट पैरेंटिंग यानी ऐसे माता-पिता, जो अपने बच्चों के आस-पास पैराशूट की भाँति मँडराते रहते हैं। उन्हें जरूरत से ज्यादा नियंत्रित करते हैं, उन पर बहुत ज्यादा ध्यान देते हैं, उन्हें बहुत ज्यादा सुरक्षित रखते हैं।

बदलते दौर में बच्चों को सिखाने, उनकी देख-भाल करने, उनका मार्गदर्शन करने के लिए बच्चों के साथ रहना भी जरूरी है, लेकिन पैराशूट पैरेन्ट्स बच्चों के हर काम, जैसे—स्कूल के टेस्ट, दोस्त चुनना, घूमने जाना, खेलना आदि उनके सभी कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं, उनके साथ-साथ रहते हैं। लेकिन बच्चों के साथ हमेशा रहने, उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता न देने से उनमें एक प्रकार की परतंत्रता की भावना पनप जाती है और इसका उनके व्यक्तित्व-विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ऐसे कई कारण होते हैं, जिनकी वजह से माता-पिता पैराशूट पैरेंट्स बन जाते हैं, जैसे—(१) जो माता-पिता अपने बच्चों को हर क्षेत्र में आगे देखना चाहते हैं, उनके मन में अपने बच्चों की सफलता, असफलता को लेकर ज्यादा भय होता है, इसलिए वे उनके साथ बने रहते हैं। तेजी से बढ़ती प्रतिस्पर्धा के इस युग में उनके बच्चे कहीं पीछे न रह जाएँ, इस वजह से वे उनके पीछे पड़े रहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि उनके ऐसा करने से उनका बच्चा सफल हो जाएगा। (२) ऐसे अभिभावक, जो यह समझते हैं कि आने वाला समय उनके बच्चों के लिए अधिक चुनौतियों से भरा है और उन्हें अपने बच्चों की काबिलियत पर विश्वास नहीं होता, इसलिए वे भी अपने बच्चों को लेकर ज्यादा परेशान रहते हैं। वे अपने बच्चों के साथ इसलिए लगे रहते हैं, ताकि उनका बच्चा असफल होने पर कहीं अवसादग्रस्त न हो जाए।

तीसरा कारण—(३) कुछ ऐसे भी अभिभावक होते हैं, जिन्हें अपने बचपन में वो सब नहीं मिला, जो वे पाना चाहते थे, इसलिए अब वो सब कुछ अपने बच्चों को देना चाहते हैं, जो उन्हें नहीं मिला। जिन माता-पिता को अपने बचपन में उपेक्षा मिली, वो भी अपने बच्चों को अधिक प्यार, अधिक समय देकर उस उपेक्षा की क्षतिपूर्ति करना चाहते हैं। (४) दूसरे अभिभावकों को अपने बच्चों के कामों में व्यस्त देखकर भी कई अभिभावकों को लगता है कि वे भी अपने बच्चों के कामों में हस्तक्षेप करें। (५) कई अभिभावकों को यह चिंता हो जाती है कि उनके बच्चों का भविष्य कैसा होगा? अपनी इस चिंता को दूर करने के लिए भी वे अपने बच्चों के साथ उनके काम में सहयोग करते रहते हैं।

पैराशूट पैरेंटिंग से जहाँ एक ओर बच्चे के अंदर आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता की भावना नहीं पनप पाती, वहीं ऐसे बच्चे अपने किसी भी कार्य के लिए दूसरों पर अपनी निर्भरता दरसाते हैं। किसी भी तरह की परिस्थितियों का स्वयं सामना करने से झिझकते हैं, चुनौतियों को सहज स्वीकार नहीं करते और न ही स्वतंत्र निर्णय ले

►युवाक्रांति वर्ष◄

पाते हैं। माता-पिता की अपेक्षाओं पर खरा उतरना ऐसे बच्चों के लिए अति आवश्यक होता है और इसमें सफलता न मिलने पर वे अवसाद में चले जाते हैं। ऐसे बच्चे सफल होने पर भी सफलता का श्रेय कभी स्वयं नहीं ले पाते, क्योंकि सफलता उन्हें अपने माता-पिता के कारण मिलती है।

एक तरह से पैराशूट पैरेंटिंग के कारण बच्चों का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता; क्योंकि ये अभिभावक अपने बच्चों को कोई काम करने ही नहीं देते और उनके काम करने से पहले ही वे उनका काम कर देते हैं। जिस तरह से किसी भी चिड़िया के बच्चों को यदि उड़ना है तो उड़ने का प्रशिक्षण तो चिड़िया देती है, लेकिन उड़ने के लिए उसके बच्चे को स्वयं पंख फड़फड़ाना होता है।

यदि चिड़िया अपने बच्चों के पंखों में चोंच न मारे, उन्हें उड़ने के लिए न धकेले, तो उसके बच्चे कभी उड़ न सकेंगे। ठीक इसी तरह यदि पैरेंटिंग यानी बच्चों के पालन-पोषण के तरीकों में यदि माता-पिता, बच्चों की हर समय मदद करते हैं, उनके पीछे पड़े रहते हैं, अपनी मरजी से उन्हें चलाते हैं, उनके हर छोटे-बड़े कार्यों को स्वयं करते हैं तो ऐसा करने से उनके बच्चे कभी अपना कार्य सही ढंग से नहीं कर पाते हैं और अपने कार्यों के लिए अपने सहयोगियों पर ही निर्भर रहते हैं।

इसलिए पैराशूट पैरेंटिंग एक तरह से अतिवाद है, जिसमें माता-पिता अपने बच्चों की जरूरत से ज्यादा देख-भाल करते हैं। यह जरूरी है कि माता-पिता अपने बच्चों का पूरा ध्यान रखें, उनकी जरूरतों का ध्यान रखें, लेकिन इस बात का भी ध्यान रखें कि उनका बच्चा जीवन की किसी भी तरह की राह पर आगे बढ़ने के लिए आत्मनिर्भर बन सके, सशक्त बन सके, सक्षम बन सके और यह तभी संभव होगा, जब माता-पिता अपने बच्चों को कष्ट सहना, मेहनत करना, हार मिलने पर सफलता के लिए पुनः प्रयास करना जैसे गुणों को सिखाएँगे।

जिस तरह बड़े पेड़ की छाँह में दूसरे अन्य पौधे विकसित नहीं हो पाते व विकसित होने के लिए उन्हें धूप यानी चुनौती रूपी पोषण की जरूरत होती है और ऐसा छाँह न होने पर ही संभव है, उसी तरह जब तक बच्चों के माता-पिता उन पर पड़ने वाले अति देख-भाल के भाव को नहीं हटाएँगे, उन्हें जीवन में स्वयं मेहनत करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे, तब तक उनके बच्चे स्वयं आगे नहीं बढ़ पाएँगे और न ही सफल जीवन जी पाएँगे। इसलिए यह जरूरी है कि बच्चों के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास के लिए उन्हें थोड़ा सहारा तो दिया जाए, लेकिन साथ ही उन्हें बिना सहारे के भी चलना सिखाया जाए। ❑

जूलियस सीजर रोमन गणतंत्र के एक प्रसिद्ध राजा के रूप में जाने जाते हैं। एक बार जूलियस सीजर को अपने किसी विरोधी द्वारा लिखे गए पत्रों का एक पुलिंदा मिला, पर उन्होंने उसे बिना पढ़े ही आग के हवाले कर दिया। यह देखकर उनके एक मित्र ने कहा—''आपने पत्र जलाकर अच्छा नहीं किया। अपने शत्रु के विचारों के प्रमाण के रूप में ये पत्र एक अच्छा दस्तावेज सिद्ध हो सकते थे।''

जूलियस सीजर ने अपने मित्र को उनके इस परामर्श पर धन्यवाद देने के उपरांत कहा—''यद्यपि मैं क्रोध के प्रति सदा सतर्क रहता हूँ, परंतु तब भी मेरी दृष्टि में उससे भी ज्यादा आवश्यक कदम यह है कि मैं क्रोध के कारण को ही सदा के लिए समाप्त कर दूँ।''

बढ़ती जनसंख्या की विकराल चुनौती



११ जुलाई, विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाया जाता है। जनसंख्या दिवस की शुरुआत संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रमों की गवर्निंग काउन्सिल द्वारा १९८७ में की गई थी। उस वर्ष विश्व की जनसंख्या पाँच खरब को पार कर गई थी और अब १९ वर्ष बाद विश्व की जनसंख्या ७ खरब से अधिक है। भारत की जनसंख्या १ खरब २५ करोड़ के लगभग है। बढ़ती जनसंख्या का यह दबाव चिंता प्रकट करने वाला है। इस चिंता से केवल देश ही परेशान नहीं है, बल्कि वैश्विक परिदृश्य में भी यह विषय चिंता का सबब बन गया है; क्योंकि धरती पर जो संसाधन हैं, वे तो निश्चित और सीमित हैं। ऐसे में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या इतने सीमित संसाधनों से इतनी बड़ी आबादी का भरण-पोषण किया जा सकता है ? ऐसे अनेक प्रश्न आज अपना उत्तर माँगते नजर आते हैं।

जनसंख्या वृद्धि से अनेक समस्याएँ खड़ी होती हैं; क्योंकि जिसकी वृद्धि हो रही है, वह कोई निर्जीव वस्तु नहीं है, बल्कि सजीव इनसान है। इसान की अपनी आवश्यकताएँ होती हैं। उसकी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक जरूरतें होती हैं। उसे जीवन जीने के लिए तमाम संसाधन चाहिए। आवास, भोजन के साथ ही शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीजों की भी आवश्यकता होती है। परंतु जब जनसंख्या में भारी वृद्धि होने लगती है तो ये सारे संसाधन कम पड़ने लगते हैं। इस प्रकार जनसंख्या और संसाधन के बीच का फासला बढ़ने लगता है।

आजादी के समय देश की जनसंख्या ३३ करोड़ थी और आज की स्थिति में भारत, विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। जनसंख्या वृद्धि का यह आँकड़ा बड़ा ही चिंताजनक है; क्योंकि उपाय अनेकों अपनाए गए, परंतु इसे नियंत्रित करना मुश्किल हो रहा है। जनसंख्या की भारत में बढ़ती हुई यह सघनता हमारे देश के विकास के लिए एक बड़ी चुनौती बनकर उभरी है।

भारत के कई राज्य विकास के पैमाने पर तो पीछे दिखते हैं; जबकि इनकी जनसंख्या विश्व के कई देशों से अधिक है। तमिलनाडु, फ्रांस से भी अधिक आबादी वाला राज्य है। ओडिशा की जनसंख्या, अर्जेंटिना से अधिक है। मध्यप्रदेश की जनसंख्या इतनी अधिक है कि इतनी थाइलैंड की कुल जनसंख्या भी नहीं है। महाराष्ट्र की जनसंख्या मैक्सिको से कहीं आगे चली गई है। उत्तरप्रदेश की भौगोलिक स्थिति और ब्राजील की तुलना करने पर ब्राजील बहुत बड़े देश के रूप में सामने आता है, परंतु जनसंख्या के मामले में उत्तरप्रदेश, ब्राजील से कहीं आगे है।

राजस्थान की जनसंख्या, इटली जैसे देश से आगे है। अपने देश में एक राज्य की आबादी भी किसी देश से अधिक है, यह बात अत्यधिक चिंतनीय है। इस क्रम में गुजरात की जनसंख्या, दक्षिण अफ्रीका से बहुत अधिक है। पश्चिम बंगाल की जनसंख्या, वियतनाम की आबादी से अधिक है। इस प्रकार अपने देश के छोटे-छोटे राज्य भी विश्व के किसी अन्य देश की आबादी से अधिक आबादी वाले हैं। झारखंड, उत्तराखंड, केरल ने भी यूगांडा, ऑस्ट्रिया, कनाडा एवं उज्बेकिस्तान को बहुत पीछे छोड़ दिया है। अपना देश विकास के मामले में भले ही पीछे हो, परंतु जनसंख्या के मामले में कहीं आगे है। कह सकते हैं कि भारत में जनसंख्या के आधार पर विश्व के कई देश बस सकते हैं।

भारत में जनसंख्या का घनत्व अत्यधिक है। अर्थात एक वर्ग किलोमीटर के दायरे में जितने लोगों के रहने की अधिकतम संख्या नियत है, उससे कहीं अधिक लोग इतने ही क्षेत्र में निवास करते हैं। अत: समझा जा सकता है कि ऐसे में वहाँ की स्थिति क्या होगी ? विगत एक दशक में भारत की आबादी १८.१ करोड़ बढ़ी है, जो ब्राजील की कुल आबादी से थोड़ी-सी ही कम है। यानी कि हमने एक दशक में एक ब्राजील खड़ा कर दिया है। जबकि ब्राजील विश्व का पाँचवाँ सर्वाधिक आबादी वाला देश है।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

अपने देश की पिछले दशक की जनसंख्या वृद्धि दर १७.६४ प्रतिशत थी। संयुक्त राष्ट्र संघ की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार वर्ष २०२८ के बाद भारत की जनसंख्या चीन से ज्यादा हो जाएगी। देश में जनसंख्या वृद्धि की जो दर है, उसके हिसाब से देश के संसाधनों पर २०२६ तक लगभग ४५ करोड़ और लोगों का अतिरिक्त दबाव पड़ जाएगा।

अपने देश में अशिक्षा, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव, विकासात्मक असंतुलन तथा परिवार नियोजन के कमजोर तरीकों के कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ी है। संभावना है कि २०५० तक देश की जनसंख्या, विश्व जनसंख्या के १७.५ प्रतिशत तक पहुँच जाएगी। भूभाग की दृष्टि से हमारे पास २५ प्रतिशत जमीन है और ४ प्रतिशत जल संसाधन; जबकि विश्व में बीमारियों का जितना बोझ है, उसका २० प्रतिशत अकेले अपने देश पर है। आज वैश्विक आबादी में प्रत्येक साल साठ करोड़ की वृद्धि हो रही है। इसका दबाव प्राकृतिक संसाधनों पर स्पष्ट रूप से पड़ रहा है। विश्व समुदाय को एक और समस्या से जूझना पड़ रहा है और वह है—स्थानांतरण की। बढ़ती आबादी के चलते लोग बुनियादी सुख-सुविधा के लिए दूसरे देशों में पनाह लेने को मजबूर हैं।

पिछले दो दशकों में अपने देश ने काफी प्रगति की है और यह विश्व की तीसरी सबसे तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था बन गया है, परंतु साथ ही उसके प्रतिकूल प्रभाव भी देखने को मिल रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय असमानताएँ पहले की तुलना में और अधिक बढ़ गई हैं। दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि से बेरोजगारी, स्वास्थ्य, परिवार, गरीबी, भुखमरी और पोषण से संबंधित कई चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

हालाँकि इन समस्याओं का विश्व के प्रायः सभी देशों को सामना करना पड़ रहा है, लेकिन अपने देश में अब भी जागरूकता और शिक्षा की कमी है। लोग जनसंख्या की भयावहता को समझ नहीं पा रहे हैं कि यह भविष्य में कितना नुकसान पहुँचा सकती है। बढ़ती आबादी के कारण दुनिया में खाद्यान्न-संकट बढ़ रहा है। अन्न के साथ जल-संकट भी बढ़ रहा है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या ने प्रदूषण की दर को भी बढ़ाया है। इससे जमीन की उर्वरता घट रही है और पानी का स्तर नीचे होता जा रहा है।

जनसंख्या की इस वृद्धि से कई तरह की विसंगतियाँ पैदा हो गई हैं। मनुष्य की संख्या तो प्रतिदिन बढ़ रही है, परंतु धरती का क्षेत्रफल नहीं बढ़ सकता, भौगोलिक परिस्थितियाँ नहीं बदल सकतीं। बढ़ती आबादी अपने देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं गंभीर आर्थिक समस्याओं का प्रमुख कारण है। पर्यावरण संबंधी समस्याएँ भी इसी की उपज हैं; क्योंकि प्रकृति के सीमित संसाधनों पर सीमित प्राणियों के पोषण का भार है। इससे जीवन और प्रकृति, दोनों की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

इस संदर्भ में भारत की पूर्व प्रधानमंत्री स्व० इंदिरा गांधी ने १९७२ में स्टॉकहोम (स्वीडन) में मानव एवं पर्यावरण पर आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में विचार व्यक्त करते हुए कहा था—अधिक जनसंख्या गरीबी को बढ़ावा देती है और गरीबी प्रदूषण को जन्म देती है। बढ़ी हुई आबादी के लिए रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी सुविधाएँ सुलभ कराना भी गंभीर चुनौती है। अगर इस ओर समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो वह देश की एकता के लिए गहरा संकट खड़ा कर सकती है।

बलवान, क्रियाशील, कर्त्तव्यपरायण, ईमानदार और मेहनती व्यक्तियों को ही जीवन का सर्वोच्च आनंद प्राप्त होता है।

— ऋग्वेद

अब सबसे बड़ी चुनौती जनसंख्या को स्थिर करने की है। जितनी संख्या है उससे अधिक न हो, उतनी ही बनी रहे—वर्तमान समय में यही हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। अपने देश में इस चुनौती को रोकना बड़ा कठिन कार्य है। इसके लिए हमें जनसंख्या वृद्धि के मूल कारणों को समझना चाहिए और योजनाबद्ध ढंग से साहस व समझदारी के साथ इसके उन्मूलन के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। प्रत्येक नागरिक को देशहित में इस दिशा में जागरूक करने का प्रयास करना चाहिए और यदि सभी नागरिक ईमानदारी से सहयोग दें तो निश्चित ही देश की बढ़ती आबादी को रोका जाना संभव है। इससे हम जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाले संकटों से मुक्त हो सकेंगे और देश समृद्ध व खुशहाल हो सकेगा। ❑

▶युवाक्रांति वर्ष◀

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः
प्रचोदयात्

गायत्री-साधना के विलक्षण प्रभाव

गायत्री महामंत्र के विलक्षण प्रभाव एवं अद्भुत चमत्कारों के विषय में प्राचीन ऋषि-मुनियों एवं सिद्ध-साधकों ने जगह-जगह पर महत्त्वपूर्ण उद्‌गार व्यक्त किए हैं। उच्च कोटि के सिद्ध-संतों एवं मूर्द्धन्य आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने भी इस महामंत्र के अद्भुत प्रभावों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। थियोसोफिकल सोसाइटी के विद्वान, श्री जे. कृष्णमूर्ति ने गायत्री-उपासना से संबंधित उनके अनुभवों का वर्णन करते हुए लिखा है कि विशेष रूप से गायत्री महामंत्र के प्रयोग ने उनके जीवन में विलक्षण परिणामों एवं प्रभावों को जन्म दिया।

उनके अनुसार इस मंत्र का उपयोग स्वार्थ के लिए न करके परमार्थ के लिए किया जाना चाहिए। वे लिखते हैं कि गायत्री महामंत्र का जहाँ भावभरा उच्चारण हो रहा होता है, देवता भी वहाँ सहायता करने के लिए पहुँच जाते हैं। गायत्री महामंत्र वस्तुतः सविता देवता के, सूर्य देवता के आवाहन का मंत्र है। जब इस मंत्र का उच्चारण किया जाता है, तब जपकर्त्ता पर स्थूल सूर्य में से प्रकाश के एक सशक्त रश्मिसमूह का अवतरण होता है। जप के समय, प्रार्थना के समय—सूर्य चाहे उदय हो रहे हों, चाहे मध्याह्न का समय हो या फिर संध्या के समय वे अस्ताचलगामी हों, सविता की, सूर्य की सूक्ष्म शक्तिकिरणें जप करने वाले पर अवश्य पड़ती हैं। रात्रि के समय तो यह किरणपुंज पृथ्वी की सतह को भेदकर आता है।

विद्वानों का कहना है कि यह प्रकाश श्वेतवर्ण का एवं कुछ सुनहलापन लिए हुए होता है। जब उसके द्वारा जप करने वाले का हृदय भर उठता है, तब उसमें से इंद्रधनुष जैसी सतरंगी किरणें बाहर निकलती हैं और जो कोई भी जपकर्त्ता के सम्मुख होता है, उस पर शुभ प्रभाव डालती हैं। यह प्रभाव केवल जपकर्त्ता के हृदय से ही बाहर नहीं निकलता, वरन उसके आभामंडल में से भी अर्द्धचंद्राकार रूप में प्रकट होता है। हृदय एवं मस्तिष्क से निकलने पर ये किरणें सामने खड़े व्यक्ति के इन दोनों अंगों को प्रभावित करके संबंधित चक्रों को जाग्रत करती हैं। प्रत्येक किरण एक ही नहीं, वरन अनेक मनुष्यों पर अपना प्रभाव डालती है।

सूक्ष्मदर्शी अध्यात्मवेत्ताओं के अनुसार, यदि सामान्य व्यक्ति का प्रभामंडल उसकी काया के बाहर डेढ़ फीट तक बाहर निकलता हो तो उसके नीचे का भाग, नौ फीट लंबे और पाँच फीट चौड़े क्षेत्र में फैल जाता है। जिस व्यक्ति का साधना-उपासना द्वारा विशेष रूप से आंतरिक विकास और परिष्कार हो जाता है, उस का प्रभामंडल लगभग सत्रह-अठारह फीट तक पहुँच और फैल सकता है और जब उसका आधा भाग वृत्ताकार बनता है, तो दूर-दूर के व्यक्तियों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

किसी व्यक्ति द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या आप मृत्यु से डरते हैं, एक निस्पृह संत ने उत्तर दिया—मैं सभी प्राणियों के साथ एकात्मता का अनुभव करता हूँ। मेरे लिए जीवन की समाप्ति और मृत्यु में कोई अंतर नहीं है; क्योंकि मैं हर स्थान पर परमात्मा को ही अनुभव करता हूँ। इसलिए मुझे कोई डर नहीं है।

यह प्रभा—मस्तिष्क से जितनी ऊपर जाती है, लगभग उतनी ही दूर यह, पैरों के नीचे पृथ्वी के भीतर भी पहुँचती है। गायत्री महामंत्र का जप करने वाले साधक का प्रभामंडल जितना अधिक विस्तृत होता है, वह उतना ही प्रभाव डालने वाला भी होता है। सामूहिक रूप से जब मंत्रोच्चारण किया जाता है तो उसका प्रभाव और भी विस्तृत हो जाता है और पृथ्वी के बहुत बड़े क्षेत्र के मनुष्यों को सूर्यगुच्छ (सोलर फ्लेअर) की भाँति प्रभावित करता है। अध्यात्म विद्याविशारदों ने विविध प्रयोगों के माध्यम से इसकी सत्यता की पुष्टि भी कर दी है। ❑

►युवाक्रांति वर्ष◄

आदिशक्ति की लीलाकथा—१२३

निमित्त कोई भी बने, कारण तो कर्म ही हैं



आदिशक्ति की लीलाकथा की कड़ियों में जीवन के सिद्धांतों का निरूपण है। जीवन न तो संयोग है और न ही अनियंत्रित घटनाक्रमों का व्यतिक्रम। प्रकृति में होने वाले अन्य घटनाक्रमों की तरह इसमें भी नियमों व उपनियमों का क्रम है। इसके भी विधि और विधान हैं। व्यवस्था का सुनियोजित व सुनियंत्रित क्रम है। हम इसे न समझ पाने के कारण इसे संयोग समझ बैठते हैं। व्यवस्थित को अव्यवस्थित एवं सुनियंत्रित को अनियंत्रित मान लेते हैं।

जीवन एवं जगत में जो भी घटनाक्रम घटित होते हैं, उन सभी के प्रायः दो आयाम होते हैं। इनमें से एक दृश्य होता है और दूसरा अदृश्य। जो दृश्य या प्रत्यक्ष अथवा तत्काल होता है, उसे हम कार्य कहते हैं, लेकिन जो अदृश्य या परोक्ष अथवा बीत चुका अतीत होता है, उसी को हम कारण कहते हैं। प्रत्येक वृक्ष अथवा पादप का कारण वे बीज होते हैं, जो बहुत पहले धरती के गर्भ में समा गए, फिर उन्होंने स्वयं को गला दिया, बाद में उन्हीं बीजों का अंकुरण वृक्ष अथवा पादप के रूप में परिवर्तित हुआ। हमारे जीवन की भी यही कथा है। इसके सभी घटनाक्रम हमारे अपने ही अतीत के कर्मों का परिणाम होते हैं। अतीत के ये कर्म, हमारी चित्तभूमि में समाकर बाद में जीवन के घटनाक्रमों के रूप में पल्लवित होते हैं।

आदिशक्ति की लीलाकथा की पिछली कड़ी में इसी सत्य का संकेत किया गया था। इसमें बताया गया था कि ऋषि—जीवन को सम्यक, समग्र व संपूर्ण रूप से देखने, समझने में समर्थ होता है। जबकि सामान्य जन जीवन को सामान्य व अपूर्ण रूप से देख पाते हैं। वे दृश्य तो देखते हैं, पर अदृश्य को नहीं देख पाते हैं। इसके बारे में वे केवल अनुमान लगाते हैं—जो न केवल आधे-अधूरे होते हैं, बल्कि सत्य से प्रायः दूर होते हैं। कार्य तो सभी देख लेते हैं, परंतु उनमें कारण को समझने व परखने की सही योग्यता नहीं होती। जबकि ऋषि, जीवन के सत्य को सम्यक, समग्र व संपूर्ण रूप से देखता है।

ऋषि, दृश्य के साथ अदृश्य को और कार्य के साथ कारण को, सही व समुचित ढंग से समझ व परख लेता है। ऋषि मेधा इसी योग्यता वाले महर्षि हैं। अब ऋषि मेधा आगे के कथाप्रसंग व घटनाक्रम के विषय में बताते हैं—

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्॥

॥ १/१/१०० ॥

अर्थ—इस प्रकार धोखे में आ जाने पर जब उन्होंने संपूर्ण जगत में जल-ही-जल को देखा।

भक्त कवि का काव्यानुवाद—

इस विधि धोखा खा जाने पर, देख भूमि सारी जलमग्न।
कमलनयन हरि से वे दोनों, बोले होकर चिंतामग्न॥

असुर मधु और कैटभ, दोनों ने श्रीभगवान से दंभ में, अहंकार से आपूरित होकर वर माँगने को तो कह दिया, पर उन्हें ऐसी प्रत्याशा बिलकुल भी नहीं थी कि श्रीहरि उनसे कुछ ऐसा माँग लेंगे। उन्होंने जो कहा था, उसमें अभिमान था, वंचना थी। उनके कथन में सत्य नहीं था। उनका अहंकार, अज्ञान से आवृत था और अभिमान, महामाया से सम्मोहित। चतुराई, चालाकी, बुद्धिप्रवणता एवं तर्ककुशलता की सीमा है। ये असीम नहीं हैं। इन्हें भी प्रभावित करने वाली उच्च शक्तियाँ हैं, जो इन्हें प्रभावित करती हैं और प्रेरित भी।

इसीलिए तो चतुराई व चालाकी भ्रमित होती हैं, बुद्धि अपनी दिशा से भटक जाती है और तर्क अपनी दिशा परिवर्तित कर लेते हैं। इन सभी की वंचना शक्ति जब-तब प्रवंचना के जाल में आ जाती है। इनकी छलना शक्ति जब-तब छल से छली जाती है। मधु-कैटभ के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। उनका अभिमान प्रवंचित हुआ और अहंकार छला गया। प्रकृति के प्रवाह को अवरुद्ध करने के फेर में उनका अपना जीवन अवरुद्ध होने के कगार में पहुँच गया।

जीवन की सत्यता का, उसकी समग्रता का बोध कराने वाली महाभारत की एक कथा है। इस कथा के अनुसार, गौतमी नाम की एक वृद्धा ब्राह्मणी के एकमात्र

►युवाक्रांति वर्ष◄

पुत्र को एक दिन सर्प ने काट लिया। सर्पदंश से उसका बालक मर गया। इस घटना के समय वहाँ पर अर्जुनक नाम का व्याध भी था, उसने अपने फंदे में सर्प को बाँध लिया। उस बँधे हुए सर्प को उसने ब्राह्मणी को दिखाते हुए कहा—"हे देवि! तुम्हारे पुत्र के हत्यारे इस सर्प को मैं अग्नि में डाल दूँ या काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ?" व्याध के इस कथन पर धर्मपरायणा वृद्धा गौतमी ने कहा—"अर्जुनक! तुम इस सर्प को छोड़ दो। तुम्हारे द्वारा इसे मार दिए जाने पर भी मेरा पुत्र जीवित नहीं हो जाएगा। इसके जीवित रहने पर मेरी कोई हानि भी नहीं होगी।"

इस पर व्याध ने कहा—"देवि! वृद्ध मनुष्य स्वभाव से दयालु होते हैं, किंतु तुम्हारा यह उपदेश शोकविहीन मनुष्यों के योग्य है। तुम मुझे इस दुष्ट सर्प को तत्काल मार डालने की आज्ञा दो।" व्याध के बार-बार कहने पर भी ब्राह्मणी किसी भी प्रकार उस सर्प की हत्या के लिए तैयार नहीं हुई। इसी समय रस्सी में बँधा हुआ सर्प, मनुष्य के स्वर में बोला—"व्याध! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तो पराधीन हूँ। मृत्यु की प्रेरणा से मैंने बालक को काटा है।"

सर्प की इस बात का व्याध अर्जुनक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह क्रोधपूर्वक कहने लगा—"अरे दुष्ट सर्प! तू मनुष्य की भाषा भले ही बोल ले, पर मैं इससे डरूँगा नहीं और न ही तुझे छोड़ूँगा। तूने चाहे किसी के कहने पर, प्रेरित करने पर यह पाप किया अथवा स्वयं किया, पर अपराधी तो तू है ही। अभी मैं तुझे अपने डंडे से कुचलकर मार डालूँगा।"

सर्प ने अपने प्राण बचाने की बहुत चेष्टा की। उसने व्याध को समझाने के अनेकों व अनगिनत प्रयास किए कि अपराध को करने पर भी दूत, सेवक तथा शास्त्र अपराधी नहीं माने जाते। अतः अपराधी मृत्यु को मानना चाहिए। सर्प के ऐसा कहने पर वहाँ शरीरधारी मृत्यु देवता भी उपस्थित हो गए। उन्होंने कहा—"सर्प! तुम मुझे क्यों अपराधी बताते हो? मैं तो काल के वश में हूँ। संपूर्ण लोकों के नियंता, काल भगवान जैसा चाहते हैं, मैं वैसा ही करता हूँ।"

यह वार्तालाप जब चल रहा था तभी वहाँ पर काल भी आ गए। उन्होंने कहा—"व्याध! बालक की मृत्यु में न तो सर्प का कोई दोष है, न मृत्यु का और न ही मेरा ही। जीव का जीवन, स्वयं उसके कर्मों के वश में है। अपने कर्मों के अनुसार—वह जन्मता है और कर्मों के अनुसार ही वह मरता है। अपने कर्मों के अनुसार ही वह सुख या दुःख पाता है। हम लोग तो उसके कर्मों का फल उसको मिल सके, ऐसा विधान करते हैं। यह बालक अपने पूर्वजन्म के ही कर्मदोष के कारण अकाल में मर गया।"

इस वार्तालाप का क्रम चल रहा था, उसी समय वहाँ पर महर्षि दुर्वासा आ गए। प्रायः क्रुद्ध रहने वाले दुर्वासा के मुख पर आज सौम्यता व शांति थी। वे न तो किसी से रुष्ट थे और न क्रुद्ध। उन्होंने ब्राह्मणी गौतमी से कहा—"देवि! काल का कथन सत्य है। इस सत्य को समझकर मनुष्य को सर्वदा शुभ कर्म करने चाहिए। जीवन में शुभ कर्मों से श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं। इनमें से शुभ कर्म करते हुए अनासक्ति व निष्कामता की भावना श्रेष्ठ है। इससे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ है—अपने समस्त कर्मों को और उनके कर्मफल को भगवान में समर्पित करते जाना। भगवान के स्मरण और उनमें सतत समर्पण के साथ जो जीवन जिया जाता है, उससे अधिक श्रेष्ठ और श्रेयस्कर अन्य कुछ भी नहीं।" महर्षि दुर्वासा की बात सुनकर वृद्धा ब्राह्मणी गौतमी का पुत्रशोक दूर हो गया। व्याध ने भी अपने बंधन में जकड़े सर्प को छोड़ दिया और उसे जीवन की नई और सही दिशा मिली। ❑

जो काम बन पड़ा है, उसकी तुलना में हजार-लाख गुना और करने के लिए पड़ा है। वह अदृश्य जगत से संबंधित एवं सूक्ष्मस्तर का भी है। उसकी जड़ें चेतना क्षेत्र के सूक्ष्मजगत में असाधारण गहराई में घुसी हुई हैं। प्रस्तुत विकृतियाँ भी अभूतपूर्व हैं। जो बदलाव, परिष्कार प्रस्तुत किया जाना है, वह भी ऐसा है, जिसे अभूतपूर्व ही कहा जा सकता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

अनुभूति से उभरे, वही है ज्ञान



ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब वह हमारे जीवन में उतरे। यदि हमारा ज्ञान केवल विचारों तक ही सीमित है, अनुभव में नहीं आया है तो ऐसे ज्ञान का कोई लाभ नहीं। कुछ लोग व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के बजाय अनेक पुस्तकें पढ़ते रहते हैं, लेकिन उनके सही अर्थ को समझ नहीं पाते, क्योंकि व्यावहारिक स्तर पर वे उस ज्ञान को आत्मसात् नहीं कर पाते। शास्त्र, ग्रंथ या पुस्तकें—हमें केवल आगे बढ़ने का मार्ग बताते हैं। एक बार यदि सही मार्ग जान लिया जाए तो फिर शास्त्रों-ग्रंथों की जरूरत न के बराबर होती है; क्योंकि फिर इस मार्ग पर चलने, आगे बढ़ने की बारी आती है।

इस संदर्भ में एक कथानक प्रासंगिक कहा जा सकता है। एक बार किसी व्यक्ति को उसके गाँव से भेजी हुई एक चिट्ठी मिली। उसमें रिश्तेदारों के यहाँ कुछ चीजें सौगात में भेजने की बात लिखी हुई थी। चीजें मँगवाते समय उसने फिर एक बार उस चिट्ठी को देखना चाहा, ताकि उसमें लिखा हुआ सभी सामान ठीक-ठीक मँगाया जा सके, लेकिन वह चिट्ठी उसे नहीं मिली, कहीं दिखाई नहीं दी। परेशान होकर उसने चिट्ठी को खोजना शुरू किया। काफी ढूँढ़ने के बाद वह चिट्ठी उसे मिली।

चिट्ठी में लिखा था—'पाँच किलो बरफी, एक दर्जन संतरे, आठ धोतियाँ और अमुक-अमुक सामान भेजना है।' यह जान लेने के बाद फिर उसे चिट्ठी की जरूरत नहीं रही। वह उस चिट्ठी को छोड़कर उन चीजों का प्रबंध करने चल दिया। इस तरह चिट्ठी की जरूरत उस व्यक्ति को तब तक थी, जब तक कि उसे उसमें लिखी हुई वस्तुओं के विषय में जानना था। एक बार उसके बारे में जान लेने के बाद फिर उसका उस चिट्ठी से विशेष सरोकार नहीं रह गया था।

इसी तरह शास्त्रों, ग्रंथों व पुस्तकों में ईश्वर के पास पहुँचने का मार्ग बताया जाता है, जीवन में आगे बढ़ने, साधना करने का मार्ग बताया जाता है, विधियाँ बताई जाती हैं। उन्हें पढ़ना, जानना यहाँ तक तो बात ठीक है, लेकिन यदि उन्हें अपने जीवन में, व्यावहारिक स्तर पर न लाया जाए तो इन बातों का कोई विशेष प्रभाव हमारे जीवन पर नहीं पड़ता। दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि ये सारे शास्त्र, तब तक अपना लाभ नहीं प्रदान कर सकते हैं, जब तक हम उनके ज्ञान को अपने अनुभव में न उतारें।

एक ही बात को कई पुस्तकों में अलग-अलग ढंग से पढ़ने पर मन में भ्रम होता है, लेकिन यदि उनमें लिखे को अनुभव कर लिया जाए, तो वह ज्ञान वास्तविक होता है। फिर हम उस प्राप्त अनुभव को ही अनेक तरह से अभिव्यक्त कर सकते हैं, उसके बारे में विस्तार से व्याख्या कर सकते हैं, लेकिन जब तक उसका अनुभव हम नहीं कर पाते, मन में उसके प्रति संशय, संदेह व प्रश्न बने रहते हैं। प्रसिद्ध संत श्री रामकृष्ण परमहंस को पुस्तकीय ज्ञान नहीं था, लेकिन उनका ज्ञान अनुभवजन्य था, इसलिए गूढ़ आध्यात्मिक ज्ञान की बातों को भी वे रोजमर्रा के उदाहरणों से जोड़कर बड़े ही सरल ढंग से समझा देते थे। संत कबीर को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

ऐसा कहा गया है कि ज्ञानवर्द्धन के लिए पढ़ने से ज्यादा सुनना अच्छा है और सुनने से भी ज्यादा अच्छा है—देखना या अनुभव करना। उदाहरण के लिए स्वयं पढ़ने से ज्यादा श्रेष्ठ किसी अनुभवी आचार्य के मुख से सत्य का श्रवण करना है; क्योंकि उनकी उस विषय पर धारणा ज्यादा गहन होती है। उससे भी ज्यादा श्रेष्ठ उस सत्य को स्वयं अनुभव कर लेना है; क्योंकि जब प्रत्यक्ष दर्शन कर लिए गए हों तो शंका व संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती है।

यदि कोई व्यक्ति काशी नगरी के विषय में पढ़ता मात्र है, तो पढ़ने मात्र से उसे, काशी नगरी का ज्ञान नहीं होगा, लेकिन जो काशी जाकर लौट आया है, उसके मुख से उस नगरी के बारे में सुनना अच्छा रहेगा और सबसे अच्छा तो यही रहेगा कि वह स्वयं ही काशी नगरी देखकर, घूमकर आए। यह स्वयं घूमकर आना ही अनुभवजन्य ज्ञान है।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

जो व्यक्ति, जानकारियों के बोझ से नहीं लदे हैं और उनका मन दूसरों से उधार लिए हुए विचारों से नहीं भरा है, वे व्यक्ति आत्मज्ञान के अधिकारी बन जाते हैं। जो एकत्रित की गई जानकारियों का अभिमान रखते हैं, उनका मन उन्हें व्यर्थ के तर्क-कुतर्क करने में उलझाता रहता है और इस कारण वे सत्य के साक्षात्कार से वंचित रह जाते हैं। पुस्तकों को व शास्त्रों को पढ़ने का भी अपना महत्त्वपूर्ण लाभ है; क्योंकि यदि स्वाध्याय करने की परंपरा ही नहीं पड़ेगी तो सत्य को पाने की जिज्ञासा कभी जन्म नहीं ले सकती। इसके साथ यह भी सत्य है कि पुस्तकों में लिखे वाक्यों तक ही जीवन को समेट लेना, स्वयं को शाश्वत सत्य की अनुभूति से वंचित रखने के समान है। इसलिए हमें स्वाध्याय तो करना ही चाहिए, पर साथ ही शास्त्रों में दी गई शिक्षाओं को अनुभव में परिवर्तित करने का प्रयत्न करना चाहिए; क्योंकि अनुभवजन्य ज्ञान ही परम सत्य कहा जा सकता है। ❑

सायंकाल होने को था। दिन के व्यस्ततम क्रम के अत्यावश्यक कार्यों के समापन के साथ ही गुरु ने एक शिष्य को किसी कार्यवश बुलवाया। गुरु के आदेशानुसार, शिष्य, गुरु के समक्ष उन्हीं के कक्ष में प्रस्तुत हुआ। कुशलक्षेम संबंधी प्रश्नों के बाद गुरु ने अपनी भावी योजनाओं के संबंध में आवश्यक निर्देश दिए एवं पूछा—"वत्स! क्या कोई समस्या है?"

शिष्य ने सहमति में सिर हिलाया और अनुमति प्राप्त कर कहने लगा—"गुरुवर! आपके द्वारा निर्दिष्ट कार्यों को करने में मुझे कोई समस्या नहीं, परंतु मेरी निज जीवन की अनेकानेक विसंगतियाँ, समय-समय पर मेरा मनोबल क्षीण करती रहती हैं।" गुरु ने बड़े ध्यानपूर्वक शिष्य की समस्याओं को सुना और उनके सहजता से आवश्यक समाधान भी सुझाए। शिष्य की अशांत मनःस्थिति के कारण, कई अनैतिक बातें वाचालतावश निकल कर सामने आईं।

सारी बातें धैर्यपूर्वक सुनने के पश्चात गुरु कुछ क्षणों के लिए गंभीर हुए और अपने आंतरिक उद्गार व्यक्त करते हुए बोले—"पुत्र! जीवन में बातें नहीं, बोध आवश्यक हो जाता है। बोधपूर्ण जीवन ही सारी-की-सारी विसंगतियों का समाधान है और बोध के अवतरण के साथ ही जीवन, समग्र रूप से प्रकाशित हो उठता है।" गुरु अपनी बोधपूर्ण वाणी कह चुकने के पश्चात जाने की आज्ञा देते हुए मुस्करा रहे थे तो वहीं शिष्य अपने कृत्य पर शरमिंदा था। उसने लौटते समय मन-ही-मन वैसा न दोहराने का संकल्प लिया और आत्मशोधन हेतु साधना करने में तत्परतापूर्वक जुट गया।

वह हृदय नहीं पत्थर है, बहती जिसमें रसधार नहीं

मनुष्य जीवन प्रेम के बिना रसहीन है, आनंदविहीन है। प्रेम, जीवन में सार्थकता का बोध कराता है और जीवन को सरस, सुंदर व अर्थपूर्ण बनाता है, लेकिन प्रेम के वास्तविक स्वरूप को पाना भी सरल नहीं है। प्रेम का घनिष्ठ संबंध मनुष्य की शुद्धतम भावनाओं से है। भावनाएँ यदि पवित्र हैं, तो वहाँ प्रेम पनपता है और वह भक्ति में रूपांतरित होता है, लेकिन यदि भावनाओं में स्वार्थ, आसक्ति व इच्छाओं का मेल हो जाए, तो यही प्रेम कलुषित हो जाता है, दूषित हो जाता है।

प्रेम क्या होता है ? इसके बारे में कवियों, दार्शनिकों, लेखकों व विचारकों ने बहुत कुछ कहा व लिखा है। प्रेम, भावनाओं का वह एहसास है, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अरस्तू कहते हैं कि 'जहाँ प्रेम है, वहीं जीवन का सही स्वरूप है।' बेकन के अनुसार—'प्रेम, समर्पण और जिम्मेदारी का दूसरा नाम है।' जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के अनुसार—'जीवन में प्रेम का वही महत्त्व है, जो फूल में खुशबू का होता है।' राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अनुसार—'प्रेम कभी दावा नहीं करता, वह हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है, न कभी झुँझलाता है और न ही कभी बदला लेता है।' कन्फ्यूशियस के अनुसार—'प्रेम, आत्मा की खुराक है।'

प्रेम को आनंदित जीवन की शुरुआत कहा जा सकता है। प्रेम के कोमल स्पर्श से ही जीवन खिलता है, फलता-फूलता व विकास करता है। जहाँ प्रेम नहीं होता, वहाँ जीवन भी मुरझा जाता है, नीरस हो जाता है, काँटों के सदृश होता है। यहाँ तक कि एक छोटे से पौधे को भी सही ढंग से विकसित होने के लिए देख-भाल की, प्यार की जरूरत पड़ती है। यदि उस पर ध्यान न दिया जाए, तो वह मुरझा जाता है, मर जाता है, जीवन की आशा खो देता है। इसी तरह से जब किसी व्यक्ति को अपनापन मिलता है, सच्चा प्रेम मिलता है, तब उसे अपना जीवन सार्थक लगता है, अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। लेकिन जब व्यक्ति को हर तरफ से उपेक्षा मिलती है, तिरस्कार मिलता है, तो उसे अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है।

आज संसार में प्रेम की कमी हो गई है। प्रेम के नाम पर छल, विश्वासघात, धोखा देखने को मिलता है और इसीलिए आज व्यक्ति विभिन्न प्रकार के तनावों व मनोरोगों से घिरा हुआ नजर आता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—व्यक्ति की दबी, कुचली व रौंदी गई भावनाएँ ही मनोरोगों का कारण हैं और यदि इन्हीं भावनाओं को सँवारा जाए, सँभाला जाए, इनकी भली प्रकार देख-भाल की जाए, तो यही भावनाएँ मन के सर्वोत्तम विकास का कारण बनती हैं। इन भावनाओं को खुराक व पोषण मिलता है—प्रेम से, अपनत्व से।

प्रेम, मानवीय व्यक्तित्व का मूल है। इसका हमारे अस्तित्व के साथ गहरा संबंध है। जिस तरह श्वास लेना शरीर की आवश्यकता है, बिना श्वास के शरीर जीवित नहीं रह सकता, उसी तरह प्रेम हमारी अंतरात्मा की श्वास है। अंतरात्मा को प्रेम से तृप्ति मिलती है। प्रेम का दायरा यदि अपनों तक ही सीमित है, तो वह व्यक्ति को तृप्त नहीं कर पाता, परंतु यदि उसका प्रेम असीम हो जाए तो वह उसके लिए अपार आनंद का माध्यम बन जाता है।

जिसके प्रेम का दायरा संपूर्ण विश्व बन जाता है, वह व्यक्ति फिर सामान्य व्यक्ति नहीं, महापुरुष—महामानव बन जाता है, संत बन जाता है; क्योंकि फिर उसका प्रेम उस जलस्रोत की तरह हो जाता है, जिससे अनगिनत लोग अपनी प्यास बुझा सकते हैं, तृप्त हो सकते हैं, जिसकी प्रेमपूर्ण छाँह में आकर अनगिनत व्यक्ति असीम शांति का अनुभव कर सकते हैं। इसलिए संत, महात्मा पूजनीय होते हैं; क्योंकि उनका प्रेम सभी के लिए समान होता है, भेदभाव व पक्षपात से रहित होता है। प्रेम की अनुभूति व्यक्ति को तृप्त करती है; जबकि प्रेम का अभाव व्यक्ति को इतना अतृप्त बनाता है कि संसार का कोई भी वैभव उसको संतुष्ट नहीं कर पाता।

एक साम्राज्ञी ने मृत्यु के उपरांत अपनी कब्र के पत्थर पर इन पंक्तियों को लिखने का आदेश दिया था—"जो व्यक्ति अत्यधिक निर्धन और अशक्त हो, वह उसकी

▶युवाक्रांति वर्ष◀

कब्र खोदकर धन प्राप्त कर सकता है।" उस कब्र के पास से अनेक दरिद्र और भिखमंगे निकले, लेकिन उनमें से कोई भी इतना दरिद्र नहीं था कि धन के लिए किसी की कब्र खोदे। फिर अंततः वह व्यक्ति भी आ पहुँचा, जिसकी दरिद्रता इतनी थी कि वह उस कब्र को खोदे बिना रह नहीं सका। वह व्यक्ति कौन था? वह एक सम्राट था, जिसने अभी-अभी वह देश जीता था। वहाँ आते ही उसने सबसे पहले कब्र को खोदने का कार्य शुरू करवाया। पर उस कब्र में उसे अपार धनराशि की जगह मात्र एक पत्थर मिला, जिस पर खुदा हुआ था—'मित्र! क्या तुम मनुष्य हो?' निश्चय ही जो मनुष्य है, वह मृतक को सताने के लिए कैसे तैयार हो सकता है? लेकिन जो धन के लिए जीवित को भी मृत बनाने के लिए सहर्ष तैयार हो, उसे इससे क्या फरक पड़ता है? यह कथानक इसी सनातन सत्य को सिद्ध करता है कि जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम नहीं है, वही दरिद्र है, वही दीन है, वही अशक्त है। प्रेम ही शक्ति है, प्रेम ही संपदा है और प्रेम ही प्रभुता है। ❑

रात्रिकालीन प्रार्थना में अभी कुछ समय ही शेष रह गया था। वहीं गुरुकुल में उपस्थित विद्यार्थियों की चहलकदमी रात्रि की स्तब्धता को भंग कर रही थी। वे सभी दिन भर की घटनाओं के आपसी विश्लेषण को लेकर व्यग्र दिख रहे थे तो वहीं परिसर के अंतिम छोर पर एकांत में एक विद्यार्थी आत्मविश्लेषण की स्थिति में पाया गया। रात्रि की गहन नीरवता के मध्य, प्रकृति को निहार रहा वह विद्यार्थी सोच रहा था कि—शाश्वत शांति की क्या कसौटी है? जीव को आखिर कब तक सांसारिक दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है?

प्रश्न बड़े गहरे थे, किंतु बीते कई दिनों के मानसिक मंथन के बाद भी वह किसी निष्कर्ष पर पहुँच पाने में स्वयं को असमर्थ पा रहा था। रात्रिकालीन प्रार्थना का निर्देश होते ही वह स्वयं भी द्रुत गति से पहुँचकर पंक्तिबद्ध होकर प्रार्थना करने लगा। उसने आँखें मूँदी ही थीं कि उसे गुरुमाता की प्रार्थना की पंक्तियों के अंश सुनाई पड़े।

तितिक्षा की कसौटी से, जिसे तू जाँच लेता है।
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से तू छुड़ाता है॥
विधाता तू हमारा है, तू ही विज्ञानदाता है।
बिना तेरी दया कोई, नहीं आनंद पाता है॥

समाधानस्वरूप इन पंक्तियों को सुन वह विद्यार्थी रोमांचित हो उठा और प्राप्त समाधान को आत्मसात् करने के साथ ही, वह मन-ही-मन कृतज्ञ भाव से गुरुमाता की वंदना करने लगा।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

श्रीराम भक्ति की साधना —११७

मायावी ताड़का का वध



ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का कथन अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि वन में अनेक सिंहों के समवेत गरजन से भी कहीं अधिक स्वर करने वाली घोर नभभेदी ध्वनि हुई। इस महाध्वनि से सभी सावधान हो गए। हालाँकि राम व लक्ष्मण को अभी तक यह समझ में नहीं आया कि यह विकराल ध्वनि किसकी हो सकती है? क्योंकि यह ध्वनि कुछ ऐसी थी कि अपनी गरजना से समस्त वन्य प्राणियों को भयभीत करने वाला वनराज सिंह भी भयाकुल होकर भाग खड़ा हो।

राम व लक्ष्मण के मुख पर आई प्रश्न की रेखाओं के चिह्न को मिटाते हुए विश्वामित्र बोले—''अब कहीं अधिक सावधान और सजग होने की आवश्यकता है। यह विकराल स्वर ताड़का का है। उसी ने इस संपूर्ण वनक्षेत्र में मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं का भी जीना दूभर कर रखा है। वह सभी के जीवन का आतंक बनी हुई है।'' ताड़का का नाम सुनकर राम ने कहा कुछ भी नहीं, परंतु उनके मुख पर प्रश्न की कुछ नई लकीरें अवश्य उभर आईं। इन्हें समझने में विश्वामित्र को तनिक सी भी देर न लगी। उन्होंने बड़े ही शांत स्वर में कहा—''क्षत्रिय राजकुलों में आखेट का प्रचलन है, परंतु तुम्हें ज्ञात है कि पशुहत्या को आखेट नहीं कहते। आखेट के भी कुछ नियम होते हैं।''

उनके इतना कहने पर राम ने धैर्य से कहा—''हाँ, पशुहत्या को आखेट नहीं कहा जाता। आखेट में निरीह व निर्दोष पशुओं व प्राणियों का वध वर्जित है। सिंह व हिरन आदि के आखेट का प्रचलन अवश्य है, किंतु उसकी भी कुछ मर्यादाएँ हैं। आखेट में केवल उसी सिंह का शिकार किया जा सकता है, जो अतिवृद्ध हो गया हो। जो स्वयं शिकार करने में अक्षम हो अथवा इस वजह से नरभक्षी हो गया है। इसी तरह से हिरन के शिकार में भी उन्हीं का शिकार किया जाता है, जो वृद्ध हो चुके हों। जिनके सींगों का आकार व बोझ बड़ा हो गया है और जो अपने जीवन की रक्षा कर पाने में सक्षम नहीं रहे।''

राम के इतना कहने पर विश्वामित्र सहजता से बोले—''नरभक्षी का शिकार करना धर्मविरुद्ध नहीं है—यह सत्य तुम जानते भी हो और मानते भी हो।'' ''अवश्य''—राम ने शांत स्वर में कहा। ''तब ऐसे में मनुष्य के जीवन को बिना किसी कारण समाप्त कर देने वाले, जीवन के सामान्य व सहज क्रम को बिना किसी कारण ध्वस्त व विनष्ट कर देने वाले, आतंक फैलाने वाले—क्या वध के योग्य नहीं हैं?'' विश्वामित्र के इस प्रश्न में राम को अपना उत्तर मिल गया। अब उनके मन में कोई प्रश्न न था। जो असंख्यों की हत्या का कारण है, उसकी हत्या संपूर्णतया धर्म है। जो ग्रामीण जनों के जीवन को नष्ट कर रहे हैं, उनकी हत्या कर रहे हैं, जो शिशुओं, युवाओं, कन्याओं को अपना आहार बना लेते हैं, उनके प्रति दयाभाव का व्यवहार—मानवता नहीं, अमानवता है।

इस विचारबोध की स्पष्टता के साथ राम व लक्ष्मण, दोनों सजग व सावधान हो गए। अब प्रतीक्षा थी—तो बस, आक्रमण की। वे इसके प्रत्युत्तर व प्रत्याक्रमण के लिए सन्नद्ध थे। उनकी इस सन्नद्धता के साथ ही वन में उभरने वाले स्वर और भी अधिक भीषण व विकराल होते गए। इसी के साथ उन पर शिलाओं की वर्षा होने लगी। उन पर बरसने वाली इन शिलाओं को वे अपने बाणों से छिन्न-भिन्न करते गए। जब इन शिलाओं का आना थमा, तो अनायास व अनपेक्षित अस्त्र उन पर बरसने लगे। इन अस्त्रों में भी परिघ-शूल, मूसल आदि अनेक प्रकार के अस्त्र थे। काफी देर तक यह अस्त्र-वर्षा चलती रही।

इनकी विफलता ने मायाविनी ताड़का को और भी अधिक आक्रोशित एवं विक्षुब्ध कर दिया। वह अपनी इस विफलता को अधिक देर तक सहन न कर सकी। इसलिए वह स्वयं अति विकराल रूप धारण करके, अपने हाथों में अति भयानक शूल लेकर स्वयं प्रकट हो गई। उसे अपने सम्मुख देखकर ऐसा लगा, जैसे अपनी संपूर्ण विकरालता व भयावहता को साथ लिए स्वयं कज्जलगिरि प्रकट हो गया हो।

►युवाक्रांति वर्ष◄

उस ताड़का को देखना ही अपने आप में भयप्रद था, लेकिन राम, लक्ष्मण सहित विश्वामित्र में से कोई भी न तो उद्विग्न हुआ और न ही अशांत। ताड़का के साथ मायावी निशाचरों का एक बड़ा दल था, जिसका नेतृत्व मारीच व सुबाहु कर रहे थे। इन सबने एक साथ राम-लक्ष्मण को उपेक्षा और तिरस्कार से देखा और ताड़का ने अति कुपित होकर विश्वामित्र पर अपने महाशूल का संहारक व संघातक प्रहार किया।

उसे इस तरह प्रहार करते हुए देख राम ने अपने अनुज लक्ष्मण से कहा—''लक्ष्मण! तुम इन निशाचरों के दल को देखो। मैं गुरुदेव पर प्रहार करने वाली इस मायाविनी को समाप्त करता हूँ। गुरुदेव की रक्षा करना मेरा दायित्व है।'' यह कहकर राम ने अपने अमोघ बाण से उसके द्वारा छोड़े गए महाशूल को कई टुकड़ों में छिन्न-भिन्न कर दिया। अपने महाशूल की यह दुर्दशा देखकर ताड़का अपनी मायावी विद्या से अनेक अस्त्रों को प्रकटकर प्रहार करती गई, लेकिन उसके सभी अस्त्र राम के अमोघ बाणों से नष्ट होते गए। अब उसके पास न तो कोई अस्त्र बचा और न कोई माया। अंत में अपनी समूची विक्षुब्धता व विकरालता को समेटकर वह राम की ओर दौड़ी, लेकिन वह अधिक दूर तक और अधिक देर तक दौड़ पाती, इससे पहले राम ने अपने धनुष से बाण छोड़ दिया।

इस बाण ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया। वह चीत्कार करती हुई भूमि पर गिर पड़ी। उसे इस तरह भूमि पर गिरते हुए देखकर लक्ष्मण के साथ युद्ध कर रहे निशाचरों के दल और उनका नेतृत्व कर रहे सुबाहु व मारीच का शौर्य व साहस समाप्त हो गया। उनके लिए ताड़का की पराजय असंभव थी। कोई ऐसा भी है त्रिभुवन में, जो ताड़का का वध भी कर सकता है, यह उनके लिए अकल्पनीय था।

आज जो उनके लिए अकल्पनीय व असंभव था, वह प्रत्यक्ष घटित हो चुका था। इस प्रत्यक्ष को भला किस तरह और कैसे वे नकार पाते? परंतु इसे स्वीकारने के अतिरिक्त और कोई भी मार्ग न था। उनके लिए विवशता थी, इस सत्य को स्वीकार करना। आँखों देखी से भला कोई इनकार कैसे कर सकता है? मारीच व सुबाहु को भी इस सत्य को स्वीकारना पड़ा। वे हताश मन से अपने साथ बचे हुए निशाचरों को लेकर भाग खड़े हुए। उन्हें मृत ताड़का के अंतिम संस्कार की भी चिंता व प्रतीक्षा न रही, लेकिन यह चिंता राम को थी। उन्होंने विश्वामित्र से कहा—''गुरुदेव! ताड़का के जीवन के साथ ही उसके दुष्कर्मों व उसकी शत्रुता का भी अंत हो गया। अब हमें विधिपूर्वक उसका अंतिम संस्कार संपन्न करना चाहिए।''

राम के इस कथन पर विश्वामित्र ने कहा—''तुम्हारा कथन सर्वथा उचित एवं मर्यादापूर्ण है। ताड़का की मृत देह का संस्कार हम अवश्य करेंगे।'' ऋषि विश्वामित्र के कथन को सुनकर राम ने लक्ष्मण को संकेत से समझाया कि अंतिम संस्कार की समुचित तैयारी की जाए। अपने अग्रज की बात समझते हुए लक्ष्मण ने वन से काष्ठ एकत्र किया। और समुचित स्थल देखकर उसे व्यवस्थित चिता का रूप दिया। चिता की व्यवस्था हो जाने पर दोनों भाइयों ने ताड़का की मृतदेह को उस पर रखा।

जिस तरह से राम और लक्ष्मण ताड़का की मृत देह को चिता पर रख रहे थे, उससे लग रहा था कि जैसे कि वह कोई उनकी सगी-संबंधी है। अंतिम संस्कार के प्रत्येक कृत्य में राम का स्नेह व अपनत्व झलक रहा था। उन्होंने बड़े धैर्य व शांति से अंतिम संस्कार की सभी विधियाँ संपन्न कीं। इनमें उन्होंने कहीं भी, कोई भी त्रुटि न रहने दी। सभी तरह के अंतिम कृत्यों को समाप्त कर उन्होंने पास के जलस्रोत में स्नान किया। अब वे विश्वामित्र के साथ आगे चलने के लिए तैयार थे। ❑

प्रख्यात उपन्यासकार हेनरी जेम्स से उनका एक पड़ोसी बहुत ईर्ष्या रखता था। एक दिन उसकी पत्नी की तबीयत बहुत खराब थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? तभी जेम्स, चिकित्सक को लेकर उसके घर पहुँचे। उन्हें देख वह व्यक्ति बोला—''मुझे आशा नहीं थी कि तुम मेरी सहायता करोगे; क्योंकि मैं तुम्हें दुश्मन मानता था।'' जेम्स मुस्कराकर बोले—''लेकिन मैंने तुम्हें कभी दुश्मन नहीं माना मेरे दोस्त।'' महापुरुष सदा दूसरों की भलाई के लिए ही सोचते हैं।

►युवाक्रांति वर्ष◄

पंचमहाभूतों का सूक्ष्मज्ञान

पंचमहाभूतों से प्रकृति अपना क्रिया व्यापार करती है, अपने नियम एवं सिद्धांतों की रचना करती है। सामान्य रूप से इन पंचमहाभूतों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के माध्यम से जो भी नियम बनते हैं, वे अपरिवर्तनीय लगते हैं। इन नियमों में कभी कोई परिवर्तन लाना संभव नहीं लगता है; क्योंकि इन पाँचों में से प्रत्येक की अपनी अवस्थाएँ हैं और इन अवस्थाओं के आधार पर ही प्रकृति की समस्त गतिविधियाँ नियोजित, नियंत्रित एवं संचालित होती हैं। पंचमहाभूतों के गुण-परिवर्तन, क्रम-परिवर्तन को तंत्रयोग में पंचीकरण विद्या के नाम से जाना जाता है। वाराणसी के सुप्रसिद्ध संत महायोगी तैलंग स्वामी इस महाविद्या में पारंगत व निष्णात थे।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के रूप में पंचमहाभूतों का निरूपण होता है। इन पाँचों की अपनी-अपनी अवस्थाएँ होती हैं और ये अवस्थाएँ प्रत्येक की पाँच-पाँच होती हैं। इस प्रकार पाँचों महाभूतों के धर्म, लक्षण और अवस्था भेदों से, पच्चीस रूप पाए जाते हैं। इसलिए प्रकृति में पच्चीस अवस्थाएँ होती हैं। इनका क्रम निरूपण कुछ इस तरह से है—

(१) स्थूलावस्था—यह आरंभिक अवस्था है, जिसे हम अपनी इंद्रियों से छू सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं, देख सकते हैं, सुन सकते हैं और इन्हीं माध्यमों से इनको अनुभव कर सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी को इंद्रियगोचर कहा गया है अर्थात इंद्रियों के माध्यम से इसे अनुभव कर पाना।

निश्चित ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश के अपने-अपने स्थूल रूप हैं। अगर इनके स्थूल रूप नहीं होते तो इंद्रियों के माध्यम से अनुभव करना असंभव हो जाता; क्योंकि इंद्रियाँ केवल स्थूल पदार्थों को ही अनुभव कर सकती हैं। जैसे फूल है तो उसे आँख देख सकती है, नाक उसकी सुगंध को सूँघ सकती है, कान उसके ऊपर मँडराते भौंरे की आवाज सुन सकते हैं, जिह्वा उसके स्वाद का परिचय दिला सकती है तथा उसकी कोमलता को हाथों से स्पर्श किया जा सकता है।

इस प्रकार पृथ्वी की स्थूल अवस्था गंध है, जल की रस है, अग्नि की रूप है, वायु की स्पर्श है और आकाश की शब्द है। पृथ्वी के बिना गंध का अनुभव नहीं हो सकता है। मिट्टी सभी प्रकार की दुर्गंध को अपने में समा लेती है और इसी मिट्टी से पौधे अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप, पुष्पों के रूप में गंध बिखेरते हैं। जल न हो तो रसानुभूति नहीं होगी। सभी रस जल से ही मिलते हैं। रूप और आकार अग्नि से प्राप्त होता है। वायु से ही शब्दों का संचार होता है। निर्वात में शब्द संचार संभव नहीं हो सकता है। सभी प्रकार के शब्द आकाश में स्थान पाते हैं और ये शब्द नष्ट नहीं होते हैं, वहीं बने रहते हैं।

अत: पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत के समय भगवान कृष्ण द्वारा गायी गई गीता को आज भी सुना और अनुभव किया जा सकता है, हालाँकि इसके लिए उसी तरह की प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। पंचमहाभूतों की ये स्थूल अवस्थाएँ हैं, जिन्हें सहजतापूर्वक अनुभव किया जा सकता है।

(२) स्वरूपावस्था—इन पंचमहाभूतों में से प्रत्येक का अपना-अपना नियत धर्म भी है, जिनसे वे जाने जाते हैं। प्रत्येक पंचमहाभूत का एक नियत धर्म होता है, जो उसे उस अवस्था से परिचय कराता है। जैसे पृथ्वी तत्त्व का धर्म है—आकार या मूर्ति। इसलिए मिट्टी के इस धर्म के कारण ही उससे एक कलाकार मूर्ति बनाकर उसे जीवंत कर देता है। इसी तरह जल का धर्म है—गीलापन। जल का स्पर्श करने पर वह गीला कर ही देता है, कोई बच नहीं सकता।

अग्नि तत्त्व का धर्म है—ऊष्णता व प्रकाश। अग्नि, अपने इस धर्म के कारण सभी को अपने में भस्मीभूत कर देती है। अग्नि, प्रकाश को भी विकीर्ण करती है। वायु का गुण-धर्म है—गति व कंपन। सभी प्रकार की गति, वायु के द्वारा ही संभव है। आकाश का गुण-धर्म है—अवकाश या स्थान; और इसी कारण हम जीवन जी पाते हैं, अन्यथा जीवन की परिकल्पना भी संभव नहीं है।

►युवाक्रांति वर्ष◄

(३) सूक्ष्मावस्था—इन पंचमहाभूतों की जो कारण अवस्थाएँ हैं, जिनको तन्मात्रा या सूक्ष्म पंचमहाभूत कहते हैं—वे इनकी सूक्ष्मावस्थाएँ हैं। जैसे पृथ्वी की गंध तन्मात्रा, जल की रस तन्मात्रा, अग्नि की रूप तन्मात्रा, वायु की स्पर्श तन्मात्रा और आकाश की शब्द तन्मात्रा है। इंद्रियाँ, पंचमहाभूतों की तन्मात्राओं को ग्रहण नहीं कर सकती हैं, इसलिए सामान्य इनसान उनसे अपरिचित होता है। चूँकि देवता सूक्ष्म होते हैं, अत: पंचमहाभूतों की तन्मात्राओं को ग्रहण करने में पूर्ण रूप से सक्षम एवं समर्थ होते हैं। देवताओं को पुष्प अर्पित किए जाते हैं। दिखने में तो वे पुष्प यथावत् दिखाई देते हैं, परंतु देवता उनकी गंध को ग्रहण कर लेते हैं। यही वजह है कि एक देवता को अर्पित पुष्प किसी अन्य देवता को समर्पित नहीं किए जाते हैं।

(४) अन्ययावस्था—प्रकृति के तीनों गुण—सत्त्व, रज व तम—सभी पंचमहाभूतों में प्रकाश, क्रिया व स्थिति के रूप में व्याप्त हैं। सतोगुण से प्रकाश व ज्ञान मिलता है। रजोगुण—चंचलता, सक्रियता, गतिशीलता का द्योतक है एवं तमस्—जड़ता, अंधता, निष्क्रियता आदि का प्रतीक है। प्रकृति इन तीनों गुणों से अपना कार्य संचालन करती है।

(५) अर्थतत्त्वावस्था—इसका अर्थ है इन पंचमहाभूतों का प्रयोजन। इन सभी पंचमहाभूतों का प्रयोजन पुरुष के भोग व अपवर्ग के रूप में है। यही इनकी प्रयोजनता या अर्थतत्त्व है।

प्रकृति इन पंचमहाभूतों के माध्यम से क्रियाशील होती है। सामान्य क्रम में हमारा ज्ञान, हमारी अनुभूति, हमारा बोध—पंचमहाभूतों की स्थूलावस्था एवं स्वरूपावस्था तक सीमित होते हैं एवं क्रियाशील रहते हैं। इसके बाहर जो तीन अवस्थाएँ हैं, इनकी अनुभूति हमें नहीं होती है, वहाँ तक हमारी कल्पनाएँ कार्य करती हैं।

ऐसा लगता है कि जीवन का यह अपरिवर्तनीय सत्य है और इसमें किसी भी तरह से परिवर्तन की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। परंतु पंचीकरण क्रिया के माध्यम से इन पंचमहाभूतों के गुण परिवर्तन, क्रम परिवर्तन को आसानी से संभव किया जा सकता है। इसके अलावा इन पंचमहाभूतों के धर्म, लक्षण और अवस्था भेदों से, पच्चीस रूपों में क्रम से संयम करने से पाँचों महाभूतों का सम्यक ज्ञान और उन पर पूरा वशीकरण हो जाता है।

यहाँ संयम का तात्पर्य है—धारणा, ध्यान व समाधि। अर्थात जो योगी समाधि के सभी सोपानों को पार कर जाता है, केवल वही संयम कर सकता है। संयम सधता है—समाधि के पार, और संयम सध जाने पर इस संयम को पंचमहाभूतों पर कर देने पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश को अपने आधीन किया जा सकता है। इससे प्रकृति योगी के अनुकूल हो जाती है।

योगी इन पंचमहाभूतों के क्रम में परिवर्तन करके कुछ भी करने में सक्षम हो सकता है। भूतजय की यह सिद्धावस्था जो योगी प्राप्त कर लेते हैं, वे बड़ी सहजता से किसी भी वस्तु के रूप व आकार में परिवर्तन करने की सामर्थ्य रखते हैं और न केवल बाहरी रूप व आकार को, बल्कि ऐसे योगी उनके गुणों को भी एक से दूसरे में स्थानांतरित कर सकते हैं।

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज के गुरुदेव स्वामी विशुद्धानंद परमहंस इस विद्या में पारंगत थे। उन्होंने एक बार एक बोतल में जिसमें सामान्य जल भरा हुआ था, उस जल को अष्टगंध में परिवर्तित कर दिया। अष्टगंध भगवान कृष्ण की देह से विकरित होती थी, जिसे धारण कर पाना अत्यंत दुर्लभ घटना है। परंतु विशुद्धानंद ने सामान्य जल के अणुओं-परमाणुओं की संरचना को परिवर्तित कर अष्टगंध की परमाणविक संरचना में बदल दिया। उनके लिए चमेली के फूल में गुलाब की गंध, कनेर के पुष्प में कमल की सुगंध पैदा करना अति सहज कार्य था।

वाराणसी के सुप्रसिद्ध संत महायोगी तैलंग स्वामी इस महाविद्या को सहजता से कर लेते थे। उन्हें तो सृष्टि निर्माण के लिए प्रयुक्त दश महाविद्याओं की सिद्धि थी। मान्यता है कि महात्मा तैलंग स्वामी ने तीन सौ पचास वर्ष से भी अधिक आयु में स्वेच्छा से अपने शरीर का त्याग किया था। महायोगी तैलंग स्वामी स्वयं को किसी भी रूप में बदलकर किसी अन्य रूप में प्रकट हो जाते थे। उन्होंने एक बार स्वयं को मिट्टी की ढेरी के रूप में परिवर्तित कर दिया एवं उनके आदेशानुसार मिट्टी को बिखेर दिया गया, परंतु वे किसी अलग स्थान से, पृथ्वी के अंदर से सशरीर प्रकट हो गए। इस तरह वे जल, अग्नि, वायु, आकाश सभी तत्त्वों में अपने को परिवर्तित कर सकते थे। उन्होंने स्पष्ट किया है कि पंचमहाभूतों से बने हुए इस शरीर का वास्तविक प्रयोजन आत्मबोध या मोक्षज्ञान है। इसी में इसकी सार्थकता है। ❑

►युवाक्रांति वर्ष◄

सर्वधर्म समभाव के प्रतीक दाराशिकोह



व्यक्तित्व, किसी जाति या स्थान विशेष का मोहताज नहीं होता। उसका अंकुरण कहीं भी हो सकता है। समाज में उसे प्रतिष्ठा मिली हो, उसकी प्रसिद्धि हो, इस पर भी उसके कार्यों की निर्भरता नहीं होती। समाज उन्हें ही याद करता है, जो सफल हों, प्रतिष्ठित हों, यशस्वी हों, लेकिन बिना यश प्राप्त किए भी कुछ ऐसे व्यक्तित्व भारत में हुए हैं, जिनके कार्यों की इतिहास में सदैव सराहना की जाती रहेगी, जिनके अमूल्य योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकेगा।

ऐसे ही व्यक्तित्वों में से एक नायाब व्यक्तित्व दाराशिकोह का रहा है। वैसे तो वे औरंगजेब के बड़े भ्राता थे, शाहजहाँ के बड़े पुत्र थे, शाहजहाँ उन्हें शासक भी बनाना चाहते थे, तब भी उनके अंदर सत्ता का लोभ-लालच नहीं था। इसके विपरीत उनके छोटे भाई औरंगजेब के अंदर सत्ता का जो लोभ था, उसके कारण उसने बड़ा ही भीषण व हृदयविदारक निर्णय लिया और अपने पिता शाहजहाँ को जेल में डाल दिया व अपने बड़े भ्राता दाराशिकोह को धोखा देकर छल से मार दिया।

दाराशिकोह को अपनी जिंदगी में राज और राजधानी दोनों ही नहीं मिले, इतिहास ने भी उन्हें भुला दिया, उन्हें कहीं स्थान न मिला। लेकिन आज उनके जाने के ३५० वर्ष बाद नई दिल्ली नगर निगम पालिका परिषद् ने ६ फरवरी को ब्रिटिश शासन के एक प्रतीक लार्ड डलहौजी के नाम वाली सड़क को दाराशिकोह के नाम पर कर दिया है। दाराशिकोह और औरंगजेब, इन दोनों ही व्यक्तित्वों को भुलाया नहीं जा सकता। ये दोनों ही व्यक्तित्व एकदूसरे के बिलकुल विपरीत हैं। औरंगजेब जहाँ अपनी जिंदगी में असहिष्णुता, कट्टरता और आक्रामकता का प्रतीक है, वहीं दाराशिकोह भारतीय दर्शन, संस्कृति व प्रीति-रीति के नायक हैं।

उनके द्वारा किए गए कार्य आज भी अविस्मरणीय हैं; क्योंकि उनके द्वारा किए गए प्रयासों द्वारा ही प्राचीन भारतीय दर्शन का प्रवाह अंतरराष्ट्रीय फलक पर चर्चित हुआ। दाराशिकोह ने ५० भारतीय उपनिषदों का संस्कृत से फारसी में अनुवाद किया था। १९वीं सदी की शुरुआत में फ्रांसीसी विद्वान आकतील दुपेरो ने इनका अनुवाद फारसी से लैटिन भाषा में करके इसे प्रकाशित किया। इसे जब प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेनहॉवर ने पढ़ा, तो उसने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं अपने स्वयं के जीवन के लिए प्रेरणादायी बताया। इस विषय में प्रसिद्ध चिंतक डॉ० रामविलास शर्मा का कहना था कि यूरोप का पुनर्जागरण, यूनानी संस्कृति की नई प्रेरणा, धार्मिक सुधार आंदोलन, औद्योगिक क्रांति, नवीन वैज्ञानिक चिंतन— इन सबके बावजूद धार्मिक अंधविश्वास लोक-मानस में उस समय दृढ़ता से जमे हुए थे। दाराशिकोह के वेदांत के अनुवाद ने शोपेनहॉवर के इन्हीं अंधविश्वासों को नष्ट कर दिया था।

दाराशिकोह को सदैव मुसलिम रहस्यवाद और हिंदू रहस्यवाद की साझी शिक्षाएँ आकर्षित करती थीं। वे दोनों धर्मों की शिक्षाओं के मिले-जुले स्वरूप को स्वीकारते थे। इन दोनों धर्मों के बीच आपसी समझ बढ़ाने के लिए ही वे भारतीय धर्मग्रंथों का फारसी में अनुवाद करने लगे। इसलामी सूफी मत और हिंदू धर्म के अपने अध्ययन के निष्कर्ष के तौर पर सन् १६५६ ई. में दाराशिकोह ने मजमा-अल-बहरीन (दो समंदर का मिलन) नामक पुस्तक लिखी। इसके बारे में उनका मानना था कि ये किताब दोनों धर्मों के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का निचोड़ है। धार्मिक ग्रंथों के अलावा दाराशिकोह को कविता करने का भी शौक था और उन्होंने कला, संगीत व नृत्य को भी बढ़ावा दिया।

दाराशिकोह संस्कृत प्रेमी भी थे। उनकी बौद्धिक संपदा थी—उपनिषदों का रहस्य काव्य। वे सभी पंथ के विद्वानों के दृष्टिकोणों को सुनते थे और यही कारण था कि उनकी प्रतिष्ठित पुस्तक 'मजमा-अल-बहरीन' में वैदिक और सूफी तत्त्वज्ञान का संगम देखने को मिलता है। उनकी रहस्य जिज्ञासा की तुलना की जा सकती है— लेबनानी चिंतक 'खलील जिब्रान' से। लेकिन जिब्रान के चिंतन में भी भारतीयता की वह सुवास देखने को

नहीं मिलती है, जो दाराशिकोह के चिंतन में है। उनके चिंतन में भारतीयता का वास है, वेदांत का अपनत्व है।

दाराशिकोह सूफीवाद और तौहीद के जिज्ञासु थे, वे सदैव सभी हिंदू और मुसलमान संतों के संपर्क में रहते थे, वे सत्संग प्रेमी थे। इसी के साथ वे महान लेखक भी थे। 'सूफीनात अल औलिया' और 'सकीनात अल औलिया' उनकी सूफी संतों के जीवनचरित्र पर लिखी हुई पुस्तकें हैं। उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'रिसाला ए हकनुमा' और 'तारीकात ए हकीकत' में सूफीवाद का दार्शनिक चिंतन है। 'अक्सीर ए आजम' नामक उनके कवितासंग्रह में उनकी सर्वेश्वरवादी प्रवृत्ति का बोध होता है। इसके अतिरिक्त उनकी पुस्तक 'हसनात अल आरिफीन' और 'मुकालम ए बाबालाल ओ दाराशिकोह' में धर्म और वैराग्य का विवेचन हुआ है।

दाराशिकोह ने कभी कट्टरपंथियों की चिंता नहीं की और अपने लेखन में भारत के अंतर्मन को स्थापित करने का उद्यम किया। उनके व्यक्तित्व में भारत का जन-गण-मन था। लेकिन दुर्भाग्यवश भारत का एक बड़ा जनसमूह आज भी उनसे अपरिचित है। यदि दाराशिकोह द्वारा उस समय उपनिषदों का फारसी अनुवाद न किया जाता, तो उनका लैटिन अनुवाद भी न होता। फिर उनका अन्य भाषाओं में भी अनुवाद नहीं हो सकता था। ऋग्वेद, हमारी पूरी दुनिया का सबसे प्राचीनतम ज्ञानकोष है। मैक्समूलर के अनुवाद के बाद इसकी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर धाक जमी और बाद में यूनेस्को ने भी इसे अपनी विश्व धरोहर सूची में जगह दी।

दाराशिकोह का व्यक्तित्व अनूठा था। उनकी तुलना इटली के दांते कवि से की जा सकती है। दाराशिकोह में अँगरेजी के कवि शेली जैसी अनुभूति तो है, लेकिन शेक्सपीयर के समान द्वंद्व नहीं है। उनकी चिंतन दृष्टि सुस्पष्ट है। वे न तो इसलाम छोड़ते हैं और न ही इसलाम का विरोध करते हैं और अपनी सीमा-मर्यादा में रहकर ही सतत प्रश्नानुकूल रहते हैं। लेकिन ज्ञान और दर्शन की प्यास में वे अतिक्रमण भी करते हैं। इस अतिक्रमण की उड़ान में वे पंख फैलाकर सारा आकाश नापते हैं।

दाराशिकोह के चिंतन में भारतीयता थी, वेदांत उन्हें प्रिय लगता था, वे उपनिषदों से भी गहराई से जुड़े हुए थे। उपनिषद् का तत्त्वदर्शन उन्हें अपनी ओर आकर्षित करता था। अपने घर-परिवार, पंथ-मजहब और समाज में रहकर सत्य की खोज में जुटे हुए इस महान राजकुमार को असमय ही धरती से जाना पड़ा। कई अन्य महापुरुषों की तरह दाराशिकोह का जीवनकाल अल्प किंतु भव्य था।

ज्ञान उनके व्यक्तित्व व चरित्र में समाया हुआ था, उनमें अध्यात्म के प्रति लगाव था, उनके जीवन में पारदर्शिता थी, स्वतंत्र चिंतन था, उनके विचार व उद्देश्य स्पष्ट थे, लेकिन शायद काल ने ही उनको वह समय नहीं दिया कि जिसमें वे अपने उद्देश्य तक पहुँच पाते और अपने विचारों को मूर्तिमान कर पाते। अपने जीवनकाल में उन्होंने जो कार्य किया, वह अविस्मणीय है। ❑

एक व्यक्ति ने एक संत को यह कहते सुना कि समय बेशकीमती है और उसकी मनचाही कीमत भी प्राप्त की जा सकती है तो वह व्यक्ति आतुरता के साथ लोगों के पास जाकर कहने लगा—"मेरा समय बेशकीमती है। उसे खरीद लीजिए।" लोगों ने पूछा—"जो समय हम खरीदेंगे, उससे तुम करोगे क्या?" व्यक्ति बोला—"मैं तो समय बेच रहा हूँ, उसका आप चाहे जो उपयोग कर लेना।" उत्तर सुन किसी ने उसे दुत्कार दिया, तो किसी ने पागल कहकर भगा दिया। वह व्यक्ति उन्हीं संत के पास पहुँचा और समय के बदले एक भी पैसा न मिलने की शिकायत की। उसकी नादानी पर संत हँसे और बोले—"बेटे! समय की कीमत जरूर मिलती है, पर वह तो कोरा कागज है। उस पर श्रम की कलम और विचार की स्याही से मूल्य भरा जाता है। श्रम और विचार मिलकर जितना मूल्य भर देते हैं, उतना अवश्य मिल जाता है।"

गुरुदेव की वापसी



विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव, परम वंदनीया माताजी के अस्वस्थ होने का समाचार सुनते ही बिना किसी पूर्व सूचना के शांतिकुंज पहुँचे। उन्हें वहाँ औचक ही आया देख, सभी सुखद आश्चर्य में डूब गए। वे उस अवधि में दस दिन के करीब शांतिकुंज में रहे और उसमें चुनिंदा लोगों से मिले भी। उन सभी कार्यकर्त्ताओं को पूज्य गुरुदेव ने अपने अज्ञातवास में होने के मूल उद्देश्य से परिचित कराया। उनके साथ मिल रहे लोगों में डॉ० प्रणव पण्ड्या भी थे, जिन्होंने उनसे वैज्ञानिक अध्यात्म के विषय में गंभीर चर्चा की। पूज्य गुरुदेव ने उनके सभी प्रश्नों का समाधान किया। इसी के साथ भावी योजनाओं को भी परमपूज्य गुरुदेव ने सभी निकटवर्ती कार्यकर्त्ताओं को समझाया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.........

यात्रा का उद्देश्य यह भी है कि विज्ञान के क्षेत्र में अभी तक जो नई जानकारियाँ विश्व भर में जुटाई जा सकी हैं, उन्हें तो प्राप्त किया ही जाए। साथ ही गुरुदेव ने स्वयं जो जाना है, उसकी जानकारी वहाँ के लोगों को भी दी जाए। गुरुदेव जब यह बात कह रहे थे तो माताजी भी वहाँ विद्यमान थीं। उनके कक्ष में ही चर्चा चल रही थी। उन्होंने बीच में ही कहा—"इससे उन लोगों को भी संतोष होगा गुरुदेव, जो आपसे प्रेरणा लेंगे। उन्हें लगेगा कि जानकारी का आदान-प्रदान हुआ है। हमने कोई मुफ्त में सूचनाएँ नहीं ली हैं। उनके बदले कुछ दिया भी है।"

वहाँ मौजूद एक कार्यकर्त्ता ने माताजी के बोलने पर व्यग्रता दिखाई। वे जैसे कहना चाह रहे थे कि अपने स्वास्थ्य को देखते हुए माताजी चुपचाप वार्तालाप सुनें तो ही अच्छा है। उन पर दबाव नहीं पड़ेगा। उन्होंने गुरुदेव की ओर मूक दृष्टि से देखा जैसे कहना चाह रहे हों कि माताजी को बोलने से मना करें। गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता को अपनी ओर देखते हुए पाया तो कहा—"चिंता मत करो। माताजी को बोलने दो। उनका कोई अनिष्ट नहीं होगा।"

फिर उन्होंने ही भगवान बुद्ध का एक प्रसंग बताया। सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन के बाद भगवान बुद्ध लोगों को धर्म का उपदेश देने के लिए निकले। उन्होंने सभा-समितियाँ आयोजित कीं और आत्मिक प्रगति की दिशा-शिक्षा देने लगे। सभा-समितियों में दस-पाँच लोग भी नहीं आते। पाँच-सात दिन तक वे प्रयत्न करते रहे। इस प्रयोग की विफलता के बारे में सोचते हुए बैठे ही थे कि उनके सामने कालपुरुष प्रकट हुआ और बोला—"लोगों से कुछ लो, तभी वे आपसे ज्ञान प्राप्त करेंगे। नहीं लोगे तो उनका अहं आड़े आएगा और वे कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे। हैं तो वे याचक और दीन ही, पर अपने आप के बारे में इस तरह का आभास नहीं होने देना चाहते।"

कालपुरुष के इस परामर्श के बाद ही महात्मा बुद्ध ने अपने हाथ में भिक्षापात्र पकड़ा और राह चलते हुए, लोगों के द्वार पर जाकर भिक्षा माँगी। इसके बाद ही उन्हें सद्धर्म का उपदेश दिया।

"तो क्या गुरुदेव आप परिजनों से अंशदान, मुट्ठी फंड या दस पैसे रोज मिशन के लिए निकालने को कहते हैं तो वह भी इसी तरह का प्रयोग है?" उस गोष्ठी में बैठे डॉक्टर साहब ने सहज भाव से पूछा। गुरुदेव ने कहा कि वे परिजन तो हम लोगों के साथ जन्म-जन्मांतरों से जुड़े हुए हैं, जमाने को बदल देने की इस युग-साधना में वे भी योगदान करते हुए दीखें इसलिए यह व्यवस्था की है। भगवान चाहें तो चुटकी बजाते दुनिया को उलट- पलट कर दें, पर वे अपने पुत्रों को सक्रिय देखना चाहते हैं।

वहाँ उपस्थित कार्यकर्त्ताओं के लिए यह स्पष्ट हो गया कि परिजनों से सीखना, सूचनाएँ आमंत्रित करना तो एक नैमित्तिक प्रक्रिया है। गुरुदेव वास्तव में विभूतिवान व्यक्तियों को कुछ देने के उद्देश्य से ही बाहर जा रहे हैं।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

प्रचार न किया जाए

"हमारी इस यात्रा के बारे में अखबारों, रेडियो और अन्य प्रचार माध्यमों में नहीं लाना है। यात्रा प्रचार के लिए कतई नहीं है, उद्देश्य संसार की विभूतिवान आत्माओं से प्रत्यक्ष संपर्क करना है। उनसे परामर्श करना है कि वे अपने-अपने ढंग से अपने क्षेत्र में, अपनी सामर्थ्य के अनुसार तत्परतापूर्वक कैसे जुट जाएँ।" कहकर गुरुदेव कुछ रुके। वे जब जा रहे हैं और महत्त्वपूर्ण लोगों से मिलेंगे भी सही तो इस बारे में किसी को बताया क्यों न जाए? वहाँ बैठे किसी कार्यकर्त्ता के मन में यह प्रश्न आया। गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता की ओर देखा। फिर माताजी की ओर देखा जैसे कह रहे हों कि इस बारे में वही कुछ कहें। माताजी ने कहा—"अगले दिनों गुरुदेव की यात्रा से कई महत्त्वपूर्ण संभावनाएँ सामने आएँगी। हम लोग सोचते हैं कि उनका श्रेय अनेक व्यक्तियों को मिले। गुरुदेव इसलिए उन्हें ही आगे रखेंगे।"

इन दिनों अंतरराष्ट्रीय मंच पर भी धर्माध्यक्षों की भूमिका संदिग्ध और लांछित होने लगी है। **वे राजनीति को प्रभावित करने और निहित स्वार्थों को पूरा करने में जुटे रहते हैं।** गुरुदेव की विदेश यात्रा के समाचार आने, प्रचार होने से सामूहिक स्तर पर कोई लाभ होगा नहीं, एक वितंडावाद जरूर खड़ा हो सकता है। इसलिए भी यात्रा को प्रचार और सूचना विश्व से नहीं जोड़ना है। उस गोष्ठी में गुरुदेव ने यात्रा के संबंध में सावधानी बरतने का एक उद्देश्य यह भी बताया था। फिर इस विषय पर चर्चा समाप्त हुई। इस बैठक में इतना और कहा गया कि अगले दिनों जब भी कभी वे यहाँ आएँगे, चुने हुए साधकों को आध्यात्मिक सामर्थ्य प्रदान करेंगे। इसके लिए मार्गदर्शक सत्ता के निर्देश-अनुसार योजना बना ली गई है। उस बारे में अगले किसी दिन चर्चा करेंगे।

इस बीच बाहर से आए कार्यकर्त्ताओं में भी कुछ को गुरुदेव के दर्शन का, उनसे भेंट का अवसर मिला। जो पंद्रह-बीस लोग उस अवधि में आए और गुरुदेव से मिले, उनमें मुंबई की एक कार्यकर्त्ता जहानारा भी थीं। उन्हें लगता था कि गुरुदेव उनकी प्रार्थना सुनकर ही आए हैं। जहानारा पारसी धर्म की अनुयायी थीं और उनका परिवार गुजरात से जाकर मुंबई बसा था। स्वभाव से विनोदी, प्रसन्न मुख और निष्ठा से गुरुदेव को अपना एक मात्र इष्ट-आराध्य मानने वाली जहानारा ने शांतिकुंज आते ही पूछा कि गुरुदेव कहाँ हैं। उनके आगमन की खबर ज्यादा लोगों को नहीं थी, कानोकान इक्का-दुक्का लोगों को ही पता चला था। इसलिए मान सकते हैं कि जहानारा को भी किसी से पता चला होगा। उनके बारे में विलक्षण संयोग यह था कि दस-ग्यारह वर्ष पहले गुरुदेव अज्ञातवास से मथुरा लौटे थे, तब भी वे अचानक इसी तरह आ गई थीं और कहने लगी थीं कि मुझे मेरे भगवान ने बुलाया था। शांतिकुंज में आने के बाद उनकी गुरुदेव से भेंट हुई। भेंट के साथ गुरुदेव कार्यकर्त्ताओं से बातचीत कर रहे थे। उन्हें अपनी आगामी योजनाओं और उनके लिए जरूरी व्यवस्थाओं के बारे में बता रहे थे। प्रसंग चल रहा था कि दस साल पहले गुरुदेव अज्ञातवास गए थे तो उन्होंने कई परिजनों को अपने पास बुलाया था। कुछ को पत्र लिखकर तो कुछ को सूक्ष्म संकेतों से प्रेरित कर। हिमालय के गुह्यक्षेत्र में ही उन्होंने इन परिजनों से कुछ महत्त्वपूर्ण साधनाएँ कराई थीं। साधना मार्ग या प्रगति में कुछ अवरोध आ रहे थे तो उनका निराकरण अपने अवदानों से किया था।

मार्गदर्शक सत्ता जब किसी साधक शिष्य के संरक्षण का दायित्व सँभालती है तो उससे होने वाली गलतियों को भी खुद ही ठीक करती है। संरक्षण और दोष परिमार्जन इसी व्यवस्था का नाम है। गुरुदेव ने इस बैठक में आगे सिखाई जाने वाली उच्चस्तरीय साधनाओं के बारे में बताते हुए कहा और स्पष्ट किया कि पिछली बार यानी दस साल पहले तो लोगों को पत्र लिखकर, संदेश भेजकर बुलाया गया था। इस बार किसी को बुलाया नहीं जाएगा। परिजन स्वयं अपने आप को प्रस्तुत करेंगे, जो लोग आने की इच्छा व्यक्त करेंगे, उन्हीं में से तय किया जाएगा कि किसे अवसर दिया जाए। कारण कि इस साधना में दिए जाने वाले अनुदानों का स्तर अधिक उत्कट होगा।

उन शिविरों का नाम रखा गया था—प्राण प्रत्यावर्तन। गुरु के प्राण-प्रवाह का साधक की चेतना में आरोपण, स्थापन। गुरुदेव ने इतना ही स्पष्ट किया कि इस योजना के अंतर्गत सजीव और संस्कारवान परिजनों को पाँच-पाँच दिन के लिए अवसर दिया जाएगा। उन्हें एकांत साधना में रखेंगे। उनमें गुरुसत्ता अपने बल का एक अंश उन्हें देगी। करीब एक हजार साधक चुने जाएँगे, जिन्हें अपने-अपने क्षेत्र में बढ़-चढ़कर भाग लेना है। उस क्षेत्र में काम कर रहे अन्य लोगों का मार्गदर्शन करना है। दूसरे शिविरों में भी प्रायः लोग व्यक्तिगत सुख-स्वार्थ की कामना

►युवाक्रांति वर्ष◄

से आते रहते हैं। यह क्रम शायद इस धराधाम पर अपने (गुरुदेव के) बने रहने तक चलता रहे, लेकिन प्रत्यावर्तन शिविरों में इसके लिए कड़ाई से मना कर दिया जाएगा। सूक्ष्मसत्ताएँ कुछ ऐसी व्यवस्था करेंगी कि व्यक्तिगत सुख-स्वार्थ सुख की बात मन में आते ही मिले हुए अवदान बरतन में छेद हो जाने पर बह जाने वाले पानी की तरह निकल भागें और पात्र खाली-का-खाली ही रहे।

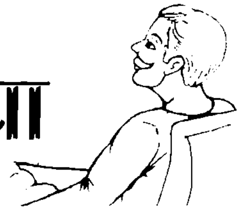
गोष्ठी में जहानारा भी चुपचाप आकर बैठ गई थी। चर्चा पूरी होने लगी तो उसने पूछा गुरुदेव मैं तो पारसी धर्म को मानती हूँ। मुझे निवेदन करने की छूट मिलेगी या नहीं। कहते हुए वह प्रणाम के लिए उठी। गुरुदेव ने वहीं बैठे रहने का इशारा किया और कहा—काय-कलेवर किसी भी धर्म, संप्रदाय या मत को मानता हो, आंतरिक चेतना इस योग्य होनी चाहिए कि उन अनुदानों को ग्रहण कर सके। सुनते हैं न कि शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही दुहा, निकाला और रखा जा सकता है। किसी और पात्र में रखें तो वह फट जाएगा। यह उक्ति प्रकट तौर पर सही हो या न हो, आध्यात्मिक अवदानों के लिए यह बात पूरी तरह सही है। वे सक्षम, पुष्ट और समर्थ आंतरिक चेतना में ही दुहे और सुरक्षित रखे जा सकते हैं। धर्म, जाति और इष्ट-आराध्य के आधार पर तुम्हारी पात्रता परखी ही नहीं जानी है जहानारा, तो तुम्हारे लिए इस कारण प्रत्यावर्तन में प्रतिबंध का कोई सवाल ही नहीं उठता।

गुरुदेव ने इसी चर्चा के दौरान अगले पाँच वर्षों में शांतिकुंज को शक्तिपुंज के रूप में काम करने की बात कही। कहा कि पाँच वर्ष तक के लिए इसे महिला जागरण केंद्र के रूप में परिणत कर दिया जाएगा। आने वाले युग का नेतृत्व भार नारी के कंधों पर ही रहेगा। धर्म, अध्यात्म, समाज, साहित्य और संस्कृति ही नहीं, राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र में भी उन्हें ही पहल करनी है। गुरुतर दायित्व उन्हीं के कंधों पर रहेगा। नारी जागरण के क्षेत्र में यहाँ चलने वाली गतिविधियों का स्वरूप इन्हीं दिनों निखर कर आएगा। ❑

सामान्य जन प्रेरणा तभी लेते हैं जब आदर्शों की चर्चा करने वाले, नीतिवेत्ता, नियम बनाने वाले स्वयं भी उनका पालन करें। एक साल लू अधिक चली। प्रजा के झोंपड़े फूस के बने थे। मजबूत सामग्री उपलब्ध न थी। न जाने क्यों लोग लापरवाह भी रहने लगे थे, सो आएदिन अग्निकांड की घटनाओं के समाचार दरबार में पहुँचते। बिंबसार जैसे दयालु राजा के लिए स्वाभाविक था कि वे पीड़ितों की सहायता करें। बहुत अग्निकांड हुए तो सहायता राशि का खरच भी पहले की तुलना में बहुत बढ़ गया। लोगों की लापरवाही रोकने के लिए राजाज्ञा प्रसारित हुई कि जिसका घर जलेगा, उसको एक वर्ष श्मशान में रहने का दंड भुगतना पड़ेगा। लोग चौकन्ने हो गए।

एक दिन राजा के भूसे के कोठे में आग लगी और देखते-देखते जल गया। समाचार मिलने पर दरबार से राजा को श्मशान में रहने की आज्ञा हुई। दरबारियों ने समझाया—"नियम तो प्रजाजनों के लिए होते हैं, राजा तो उन्हें बनाता है, इसलिए उस पर वे लागू नहीं होते।" परंतु बिंबसार ने किसी की न मानी। वे फूस की झोंपड़ी बनाकर श्मशान में रहने लगे। समाचार फैला तो सतर्कता सभी ने अपनाई और अग्निकांड की दुर्घटनाओं का सिलसिला समाप्त हो गया।

सुखमय बनाएँ वृद्धावस्था



वृद्धावस्था को अनुभवों का खजाना कहा जाता है। चीन में लोग वृद्धावस्था को बहुत शानदार मानते हैं और परमात्मा का उपहार तक मानते हैं। अपने देश में अभी तक बुजुर्गों को बहुत सम्मान एवं आदर की दृष्टि से देखा जाता था, किंतु आज परिस्थितियाँ बदली हुई दिखती हैं। किसी समय वृद्धावस्था का उपयोग लोग अपने जीवन भर के अनुभवों को बाँटने के लिए करते थे और अन्य लोग भी उन अनुभवों को हृदय से स्वीकारना चाहते थे, परंतु आज ऐसा होता दिखाई नहीं पड़ता है।

मनुष्य की औसत आयु भी वैज्ञानिक प्रगतिशीलता के साथ बढ़ी है। संसार में साठ वर्ष एवं उससे अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या अधिक है। यही कारण है कि आज उम्रदराज व्यक्ति हर देश में, हर प्रांत में देखने को मिल जाते हैं। अधिकतर वृद्ध एकाकी जीवन जीने को बाध्य हैं। समय रहते यदि जीवन में आगे आने वाली समस्याओं की गंभीरता को गहराई से सोचा जाए और उसके अनुरूप योजना बनाकर चला जाए, तो बहुत-सा समाधान मिल सकता है और वृद्धावस्था को आनंददायक बनाया जा सकता है। अवकाशप्राप्ति के बाद की अवस्था भी तब सुखमय व आनंदित रह सकती है।

अनुसंधानकर्त्ताओं ने वृद्धावस्था को सुखमय व आनंदपूर्ण किस तरह से बनाया जा सकता है, इस संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र सुझाए हैं। वे हैं—(१) शारीरिक स्वास्थ्य (२) आर्थिक आत्मनिर्भरता और (३) मानसिक स्वास्थ्य। इनमें शारीरिक स्वास्थ्य सर्वप्रमुख है। 'जान है तो जहान है'—की उक्ति विश्वप्रसिद्ध है। विशेषज्ञों ने मध्यम वर्ग की आयु के अर्थात पचास वर्ष से अधिक आयु के हजारों व्यक्तियों का अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला है कि दिन भर बैठकर काम करने वाले व्यक्तियों को हृदय रोग होने की तिगुनी संभावना रहती है, फिर चाहे अवस्था कुछ भी हो।

जो लोग नियमित भ्रमण करते हैं, योग-व्यायाम करते हैं, तैराकी करने जैसी गतिविधियों में संलिप्त रहते हैं, उनके इस तरह की बीमारियों के चंगुल में फँसने की संभावना कम रहती है। स्वास्थ्य विज्ञानियों के अनुसार, विश्राम एवं गहरी नींद का स्वस्थ रहने से गहरा संबंध है। परिश्रम करने पर ही गहरी नींद आती है। आरामतलब या निठल्ले बैठे रहने वाले इस सुख से वंचित रह जाते हैं। चिकित्सकों का तो यहाँ तक कहना है कि प्रातः एवं सायंकालीन भ्रमण करना, नींद की गोली खाने से भी अधिक प्रभावी होता है।

वृद्धावस्था में अधिकतर समस्याएँ आर्थिक होती हैं। अतः पैसे का दुरुपयोग न करना, आड़े वक्त के लिए बचत करना, संयम बरतना, भोजन, वस्त्र, निवास, मनोरंजन आदि में विचारपूर्वक व्यय करना—जैसे महत्त्वपूर्ण सूत्रों का ध्यान रखा जाए, तो बेंजामिन फ्रैंकलिन के शब्दों में, उनकी ही तरह वृद्धावस्था में हर व्यक्ति के पास पैसे की पर्याप्त बचत होगी । उसके साथ ही आर्थिक बचत से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है—मानसिक एवं आत्मिक विकास । इसके लिए अपने विचारों पर तथा अपने ऊपर संयम रखना जरूरी है। अपने आप को वृद्ध न मानकर युवा मानसिकता को बनाए रखना और सक्रिय रहना स्वस्थ रहने का मूलमंत्र है।

आशा, मनुष्य के लिए अमृत के समान है। जिस प्रकार से पेड़-पौधों को सूरज से जीवन मिलता है, उसी प्रकार आशा, मनुष्य को नए उत्साह से भरती है।

छोटी-छोटी बातों एवं घटनाओं में खुशियाँ ढूँढ़ लेना, उनका आनंद लेना एवं प्रख्यात कवि वर्ड्स वर्थ की तरह प्राकृतिक दृश्यों व वस्तुओं को देखकर उनसे आनंद व उल्लास का अनुभव करना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था को परमात्मा का उपहार मानकर परोपकार में संलग्न रहने से भी जीवन आनंदपूर्वक कट जाता है और इससे जो संतोष और सुख प्राप्त होता है, वह युवावस्था से भी बढ़कर होता है। ❑

▶युवाक्रांति वर्ष◀

दृष्टि-दोषों का यौगिक समाधान

आधुनिक संदर्भ में एक ओर चिकित्सा के नए-नए आयाम विकसित हो रहे हैं, तो दूसरी ओर तरह-तरह की बीमारियाँ भी बढ़ती जा रही हैं। मन और शरीर की बढ़ती बीमारियों में आँखों की समस्याएँ भी गंभीर चिंतन एवं शोध का विषय हैं। स्वस्थ आँखों से व्यक्ति के मनो-शारीरिक स्वास्थ्य का पता चल जाता है। यदि शरीर किसी तरह रोगग्रस्त हो जाए तो उसका सीधा असर आँखों पर पड़ता है; क्योंकि आँखें शरीर के अत्यंत संवेदनशील अंगों में से एक हैं। आँखों अथवा नेत्रों की इसी विशेषता के कारण नेत्रों को देखकर रोगों के निदान की एक नई पद्धति विकसित हुई है।

अस्त-व्यस्त जीवनशैली, तनाव, चिंता आदि से गुजरने पर व्यक्ति कभी-न-कभी रोगी अवश्य हो जाता है, जिसके कारण नेत्र भी रोगग्रस्त हो जाते हैं। आधुनिक शोध आँकड़े दरसाते हैं कि दृष्टिक्षति और नेत्र के विभिन्न प्रकार के रोगों के मामलों में निरंतर बढ़ोत्तरी हो रही है। इनमें भी दूरदृष्टिदोष और दृष्टिवैषम्यता के मामले अत्यधिक बढ़ रहे हैं। उपचार के नाम पर जो तकनीकें अपनाई जाती हैं, उनसे अस्थायी समाधान प्राप्त होता है। ऐसे में ठोस कदम उठाते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में यौगिक प्रबंधन द्वारा उक्त रोगों का स्थायी समाधान खोजने का प्रयास करते हुए एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोधकार्य विश्वविद्यालय के मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी योगेंद्र सिंह द्वारा वर्ष २०१२ में संपन्न किया गया, जिसका विषय था—**दूरदृष्टिदोष एवं दृष्टिवैषम्य का यौगिक प्रबंधन: एक प्रयोगात्मक अध्ययन।** यह अध्ययन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं प्रो० ए० के० दत्ता के निर्देशन में पूरा किया गया।

इस प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने फेको आई सर्जरी सेंटर फिरोजाबाद से आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा कुल ४० नेत्र रोगियों का चयन किया, जिनमें सभी पुरुष थे एवं उनकी आयु २० से ३५ वर्ष के मध्य थी। इन ४० लोगों में २० दूरदृष्टिदोष से ग्रसित थे एवं २० दृष्टिवैषम्य से ग्रसित थे। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी नेत्र रोगियों का ए-स्कैन, अल्ट्रासाउंड बायोमेट्री, स्नेलन चार्ट एवं केरेटोमीटर उपकरण द्वारा परीक्षण किया गया। तत्पश्चात शोधार्थी द्वारा एस० आर० के० इंटर कॉलेज, फिरोजाबाद के प्रांगण में ३ माह की अवधि में नियमित १ घंटे ३० मिनट तक चयनित लोगों को योगाभ्यास कराया गया।

नेत्र रोगों के यौगिक प्रबंधन के अंतर्गत शोधार्थी ने जिन विशिष्ट यौगिक क्रियाओं का चयन किया, वे हैं—(१) नेति (जलनेति प्रतिदिन एक बार एवं सूत्रनेति सप्ताह में एक बार), (२) चक्षु-व्यायाम, (३) नासिकाग्र मुद्रा (५ मिनट प्रतिदिन), (४) प्राणायाम (नाड़ीशोधन प्राणायाम १० से १५ चक्र प्रतिदिन, प्रश्नोत्तरी ५ मिनट)।

उक्त योगाभ्यास को स्वयं शोधार्थी द्वारा निर्धारित अवधि तक नियमित कराया गया एवं तत्पश्चात पूर्व की ही भाँति सभी चयनित नेत्र रोगियों का पुनः परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने यह पाया कि दूरदृष्टिदोष एवं दृष्टिवैषम्य पर योगाभ्यास का प्रभाव सार्थक एवं सकारात्मक पड़ता है।

शोध अध्ययन में सार्थक एवं सकारात्मक परिणाम प्राप्त होने का महत्त्वपूर्ण कारण है—शोधार्थी द्वारा अपनाई गई विशिष्ट यौगिक क्रियाएँ। दूरदृष्टिदोष—जिसमें व्यक्ति पास की वस्तुओं को ठीक से नहीं देख पाता तथा दृष्टिवैषम्य—जिसमें वस्तु वास्तविक आकार से बड़ी, धुँधली व अस्पष्ट दिखाई देती है। इन दोनों प्रकार के नेत्र रोगों का संबंध शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य से है। चूँकि योग एक संपूर्ण चिकित्सापद्धति है, अतः वह नेत्र रोगों को ठीक करने के साथ-साथ उनके उत्पन्न होने वाले कारणों का भी जड़ से समाधान करने में सक्षम है।

इस अध्ययन में शोधार्थी द्वारा चयनित योगाभ्यासों में सर्वप्रथम है—नेति। इसमें जलनेति व सूत्रनेति, दोनों

▶युवाक्रांति वर्ष◀

तनाव को कम करने, मस्तिष्क को शांत रखने एवं दृष्टिक्षमता को बढ़ाने में सहायक हैं। ये यौगिक क्रियाएँ नासिका मार्ग में उपस्थित नेत्रों की नाड़ियों को प्रभावित कर एक-एक पेशी को शांत और शिथिल करती हैं और दृष्टि संबंधी दोषों को दूर करती हैं। इसी प्रकार योगाभ्यास में अपनाए गए आठ प्रकार के चक्षु व्यायाम, नेत्रों की मांसपेशियों को शिथिल कर उनमें रक्त के संचार को सुचारु रूप से बढ़ाकर उनके तनाव को कम करते हैं और नेत्रों की क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं। पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार, नियमित रूप से १० मिनट तक सही ढंग से चक्षु-व्यायाम के अभ्यास के द्वारा दृष्टिदोषों को दूर कर सही दृष्टि पाई जा सकती है।

दृष्टिवैषम्य का मुख्य कारण तनाव ही होता है, जिसे मुद्रा (नासिकाग्र मुद्रा) अर्थात एक तरह के त्राटक एवं नाड़ीशोधन प्राणायाम के नियमित अभ्यास द्वारा दूर किया जा सकता है। नासिकाग्र मुद्रा से अल्फा तरंगों की मात्रा में वृद्धि होती है, फलस्वरूप मानसिक तनाव में भी कमी आती है और मानसिक शांति एवं एकाग्रता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

नाड़ीशोधन प्राणायाम अपने आप में योग की एक ऐसी तकनीक है, जिसके अभ्यास से न केवल नेत्र विकार ठीक होते हैं अपितु संपूर्ण मन:संस्थान और शरीर आरोग्य प्राप्त करता है। प्राणायाम का अभ्यास हाइपोथैलेमस को सक्रिय कर देता है, जिससे रक्त में नॉरएपीनेफ्रिन की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप मस्तिष्क से डोपामीन नामक न्यूरोट्रांसमीटर का स्राव होता है, जो मन को प्रसन्न रखता है और तनाव को कम करता है तथा तनाव से संबंधित नेत्र रोगों पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है।

शोधार्थी ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि उक्त योगाभ्यास से दूरदृष्टिदोष से ग्रसित लोगों की आँखों की एक्जियल लेंथ, विजुअल एक्यूटी पर सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ा। इसी तरह दृष्टिवैषम्य से ग्रसित लोगों की दोनों आँखों की कॉर्नियल कर्वेचर पर योगाभ्यास का सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ा। अध्ययन के दौरान प्राप्त हुए अनुभवों और शोध परिणामों के आधार पर शोधार्थी की मान्यता है कि योगाभ्यास से दृष्टिदोषों के अतिरिक्त नेत्र की अन्य बीमारियों, जैसे—ग्लूकोमा, प्रारंभिक मोतियाबिंद और भैंगापन आदि पर भी प्रयोग कर सार्थक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। योगाभ्यास के साथ आयुर्वेद चिकित्सापद्धति को संयुक्त कर नेत्ररोगों का सार्थक, समुचित और स्थायी समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

गुणवत्ता, उपयोगिता एवं महत्त्व की दृष्टि से यह शोध अध्ययन अति विशिष्ट है। इसका एक पहलू योग चिकित्सा के महत्त्व एवं प्रभाव को उभारता है तो दूसरा पहलू नेत्र जैसे शरीर के अत्यंत संवेदनशील अंग को नीरोग एवं स्वस्थ रखने तथा रोगग्रस्त होने पर सार्थक व स्थायी उपचार का मार्ग प्रशस्त करता है। ❑

नेपोलियन बोनापार्ट बचपन में बहुत गरीब थे। उनकी पड़ोसी महिला उन्हें खाना व कपड़े दे दिया करती थी। आगे चलकर नेपोलियन फ्रांस के सम्राट बने। एक दिन वे अपने पुराने घर पहुँचे तो उन्होंने उस पड़ोसी वृद्धा को पहचान लिया, जो बचपन में उनकी सहायता किया करती थी। नेपोलियन ने झुककर वृद्धा का अभिवादन किया और उनसे बोले—"माँ! मैं वही नेपोलियन हूँ, जो तुम्हारी दी हुई रोटियाँ खाकर व कपड़े पहनकर बड़ा हुआ। मैं आज आपका धन्यवाद करने आया हूँ।" सम्राट के मुँह से सहृदयता की बातें सुन वह भावविभोर हो उठीं। नेपोलियन बोले—"माँ! क्या आज आप अपने हाथ की बनी रोटी नहीं खिलाएँगी?" वृद्धा झटपट रोटियाँ लेकर आईं। नेपोलियन ने उन्हें प्रेमपूर्वक खाया और जाते समय उनके लिए बहुत-सा धन छोड़कर गए।

परिवर्तन को स्वीकारना जानें



दृश्य बड़ा ही मनोरम था। सूर्योदय के समय पूरी पहाड़ी सुनहले सूर्य के प्रकाश से नहा उठती थी और सूर्यास्त की रक्तिम आभा से उसका सौंदर्य और भी बढ़ जाता था। पहाड़ी पर पक्षियों का कलरव एक नए प्राकृतिक संगीत को जन्म देता था। इस पहाड़ी के नीचे एक छोटी-सी नदी बहती थी। नदी का जल बड़ा ही निर्मल था। जल इतना निर्मल था कि उसके नीचे के रंगीन पत्थर आदि साफ नजर आते थे। नदी के आस-पास समतल जमीन फैली हुई थी, जहाँ पर आसानी से गाँव बसाया जा सकता था। इस प्राकृतिक सौंदर्य, नदी और समतल मैदान का ऐसा संयोग देखकर समरेंदु और उसके साथी राधारमण, नागेश्वर, प्रभाकर की आँखें चमक उठीं।

समरेंदु अधेड़ उम्र का था और वही उन सभी का मुखिया था। अपने अच्छे गुणों और सबके लिए अच्छा सोचने के कारण उसे सब मानते थे और उसके कहे अनुसार चलते थे। वह सभी लोगों को एक साथ रखता था, उनकी व्यवस्था करता था और सबको उनके अनुरूप काम देकर, खूब अच्छी तरह से समझाता था। भूकंप के कारण समरेंदु का पुराना गाँव नष्ट हो चुका था और वे लोग गाँव बसाने के लिए एक नए स्थान की तलाश में थे, जो अब पूरी होती नजर आ रही थी।

समरेंदु ने कहा—"नागेश्वर यहाँ समतल मैदान है, पास में नदी बह रही है। जमीन, पानी और प्राकृतिक वातावरण—ये सभी एक अच्छा गाँव बसाने के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ हैं। साथ ही यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य भी अद्‌भुत है। हम यहाँ पर गाँव बसाकर रहें तो कैसा रहेगा?" नागेश्वर ने कहा—"आप ठीक कहते हैं। गाँव बसाने के लिए यह उपयुक्त जगह है। गाँववालों की आवश्यकताएँ यहाँ आसानी से पूरी हो सकती हैं। इसलिए यही स्थान सबसे श्रेष्ठ रहना चाहिए।" राधारमण एवं प्रभाकर ने भी इस हेतु अपनी सहमति जता दी और निश्चित हो गया कि इस समतल मैदान को एक छोटे से गाँव में परिवर्तित कर दिया जाए और मिल-जुलकर सुखपूर्वक जिया जाए।

समरेंदु और उनके सभी साथियों ने पहाड़ियों के नीचे की घाटियों में एक गाँव बसा दिया और कुछ ही समय में सभी लोग, अपनी-अपनी झोंपड़ियाँ बनाकर वहाँ रहने लगे। यह समय सरदी का था। अत: ठंढ से बचने के लिए लोग पहाड़ी से सूखी लकड़ी काटकर ले आते थे। वह घर में चूल्हा जलाने के भी काम आती थी और उससे अलाव जलाकर लोग ठंढ से बचाव भी करते थे। धीरे-धीरे पहाड़ों को काटकर खेत बनाए जाने लगे और उनमें फसल एवं सब्जी भी उगने लगी। पशुओं के लिए चारा भी उगाया जाने लगा। इस प्रकार सामूहिक श्रम और सहकार से एक खुशहाल गाँव बस गया। वहाँ के सभी लोग खुश थे।

ठंढ का मौसम गया। गरमी आई। गरमी का मौसम भी वहाँ बड़ा सुहाना-सा था। ज्यादा गरमी नहीं लगती थी; क्योंकि गाँव चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ था और बीच में नदी बह रही थी। इसलिए गरमी भी आसानी से व्यतीत हो गई। परंतु जब वर्षा आई तो वर्षा के साथ वहाँ तबाही का मंजर उठ खड़ा हुआ। गाँववालों को इस तरह के परिदृश्य की उम्मीद नहीं थी। नागेश्वर कह रहा था—"मुखिया जी! भयंकर बारिश से ये जीवनदायी पहाड़ी नदियाँ, उफनकर काल का रूप धारण कर रही हैं। एकाएक बाढ़ आ गई है और इस बाढ़ से हमारे सारे घर बह रहे हैं। खेती-बारी नष्ट होती जा रही है, सारे जानवर बहे जा रहे हैं। पूरा गाँव उजड़ रहा है। हमारे छोटे-छोटे बच्चे भी डूबते-डूबते बच रहे हैं। तेज हवाओं के कारण पहाड़ों से पेड़ और पत्थर गिरते हैं, जिनसे कई गाँववालों की जानें चली गई हैं। अब हम लोग क्या करें?"

समरेंदु को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह बोला—"इस वर्षा को किसी तरह झेल लेते हैं। वर्षा खतम हो जाएगी, इसके बाद फिर से गाँव की मरम्मत करेंगे। समय बीता, मौसम बीता और फिर से गाँव की हालत ठीक की गई। फिर मौसम बीते और फिर वर्षा का मौसम आया और फिर से गाँववालों को उसी कष्ट से गुजरना पड़ा। पूरे वर्ष की मेहनत इस बाढ़ में बह

जाती, पूरे वर्ष का उल्लास इस मौसम में मातम के रूप में बदल जाता। किसी को नहीं समझ में आ रहा था कि क्या करें? किसी को समझ नहीं आ रहा था कि इस संकट से कैसे निकला जाए?''

समरेंदु सहित समस्त गाँववालों ने यह मान लिया था कि जिंदगी ऐसी ही है। यही हमारी नियति है। ऐसे ही जिंदगी चलती रहेगी। इस संकट को टाला नहीं जा सकता, अत: इसे सहना ही होगा। कुछ सालों बाद एक संत उस पहाड़ी गाँव में पहुँचे। उनसे समस्त गाँववालों ने अपना दु:ख-कष्ट कहा। उनकी बातें सुनकर संत को गाँववालों की नादानी समझ में आ गई और उन पर दया आई। उन्होंने गाँव के मुखिया समरेंदु से कहा—''आप लोगों का कष्ट इसलिए है; क्योंकि आप नीचे घाटियों में रह रहे हैं। यहाँ रहते हुए आप लोगों की समस्याएँ कभी हल नहीं हो सकेंगी। यदि आप अपने मकान थोड़ी ऊँचाइयों में बनाएँगे तो इन समस्याओं से बच जाएँगे।''

लोगों ने कहा—''महात्मन्! हम वर्षों से यहाँ रह रहे हैं। यदि ऊपर ऊँचाई पर जाएँगे तो क्या अंतर पड़ेगा। कहीं और मुसीबत तो नहीं आ जाएगी। इससे अच्छा है कि जो भी है, उसे स्वीकार करते हुए जीवन जिया जाए।'' इस पर संत ने कहा—''इस खाईनुमा घाटी तथा समतल मैदान का मोह छोड़ो। देखो इतने अच्छे पहाड़ तुम्हारे चारों ओर हैं। इनके ऊपर अपना मकान बनाओ।'' समरेंदु ने इसके जवाब में कहा—''क्या इससे ऊँचे पर मकान बनाने से हमारी समस्याएँ हल हो जाएँगी? वर्षा तो तब भी आएगी। नदियाँ फिर भी रहेंगी। आँधियाँ भी उठेंगी।'' इस तरह समरेंदु के साथ गाँववालों ने भी अनेकों तर्क दिए।

संत, गाँववालों के तर्कों को सुनकर समरेंदु को संबोधित करते हुए बोले—''समरेंदु! तुमने जो अभी वस्त्र पहन रखे हैं, क्या ये वस्त्र आज से बीस वर्ष पहले भी पहना करते थे?'' समरेंदु ने उत्तर दिया—''महात्मन्! बीस वर्षों में तो मेरा शरीर पूर्णतया बदल गया है। अब वो वस्त्र मुझे कहाँ आ सकते हैं, जो बीस वर्ष पूर्व आया करते थे?'' संत बोले—''बेटा! जैसे शरीर की नाप बदल जाने के साथ वस्त्रों को भी बदलना आवश्यक हो जाता है, वैसे ही परिस्थितियाँ बदलने के साथ अपने जीवन के निर्धारणों को बदलना भी उपयुक्त रहता है। तुम लोगों ने जब इस गाँव को बसाया, तब नदी की यह समस्या तुम लोगों के सम्मुख नहीं थी। अब बदली हुई परिस्थिति में उसके अनुरूप निर्णय लेना ही उचित होगा।''

संत का यह कथन समरेंदु एवं उसके साथियों को उचित लगा और उन्होंने महसूस किया कि जीवन के पुराने ढंग को बदलने के लिए उन्हें प्रयास करना चाहिए। वे सभी फिर से अपनी झोंपड़ियों को तोड़कर ऊँचाई पर बनाने लगे और देखते-देखते उन्होंने गाँव को वहीं स्थानांतरित कर दिया। अगली वर्षा के मौसम में वर्षा तो खूब हुई, नदी में भी उफान आया, पर इस बार वे सभी सुरक्षित रहे। उनकी समझ में आ गया था कि जो अपने जीवन के ढंग को रूपांतरित करने का साहस जुटा लेता है, केवल वही आनंद का उत्सव मना सकता है, यही आनंदोत्सव है। ❑

हाइजेनबर्ग जब १९ वर्ष के थे, तब वे पाठशाला में संतरी की ड्यूटी दिया करते थे। एक दिन ऐसे ही ड्यूटी करते हुए उन्हें प्राचीन ग्रीक साहित्य की एक ऐसी पुस्तक प्राप्त हुई, जिसमें भौतिकी के सिद्धांत दिए हुए थे। उस पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते उनकी भौतिक विज्ञान में इतनी रुचि हो गई कि उन्होंने उसी क्षेत्र में कुछ करने की ठान ली। अपनी प्रतिभा और इच्छाशक्ति के बल पर वे क्रमश: बड़े पदों पर आसीन होते गए और अंतत: उन्हें एक दिन भौतिक विज्ञान में असाधारण योगदान के लिए नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया। उनके द्वारा दिया गया प्रख्यात 'अन्सर्टेन्टी प्रिंसिपल' आज भी भौतिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व माना जाता है। यह उदाहरण इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि सच्ची जिज्ञासा के बल पर सब कुछ संभव है।

अहंकार मिटे तो भक्ति प्रकटे



भक्त और ज्ञानी, दोनों ही परमात्मा तक पहुँचते हैं। भक्त, भक्तिमार्ग से वहाँ पहुँचता है और ज्ञानी, ज्ञानमार्ग से वहाँ पहुँचता है। भक्त के लिए भक्तिमार्ग में एक सुविधा है। वह प्रथम पग पर ही मिटने लगता है; क्योंकि पहले ही चरण पर उसे मिटना होता है। इसे सुविधा के बजाय अनिवार्यता कहना चाहिए, परंतु ज्ञानी के साथ यह अनिवार्यता नहीं है। भक्त, अहंकार के रोग के साथ एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता है; जबकि ज्ञानी के साथ यह रोग चल सकता है। हालाँकि ज्ञान हो जाने पर अहंकार रूपी रोग छूट जाता है, लेकिन भक्ति के पथ में इसे प्रवेश द्वार पर ही छोड़ना होता है। भक्त का उद्धार जल्दी होता है। उद्धार ज्ञानी का भी होता है, लेकिन उसे थोड़ी देर लगती है। घटना अंत में घटित होती है।

भक्त का, उसकी अपनी भक्ति का अपना एक दृष्टिकोण है। भक्त अपने कर्मों को अपने परमप्रिय भगवान में अर्पण कर देता है, समर्पण कर देता है। वह कहता है—अब मैं नहीं कर रहा हूँ, अब मैं कुछ भी नहीं सोच रहा हूँ, अब मैं कुछ भी जान नहीं रहा हूँ, तू ही कर रहा है, तू ही सोच रहा है, तू ही जान रहा है। वह भले-बुरे का भी भाव छोड़ देता है। कुछ भी भाव नहीं रखता। वह अपने आप को उसके हवाले कर देता है, अपना सर्वस्व उस पर वार देता है। वह अपने पास कुछ भी नहीं बचाता, जो कुछ भी उसके पास है; उस सबको अपने परमप्रिय को समर्पित कर कहता है—''जैसी तेरी मरजी। अब से मेरी कोई मरजी नहीं है। जैसा तू चाहे वही होगा, जैसा तू चलाए वही चलेगा, जैसा तू सोचे वही सोच ही शिरोधार्य है। अब तू ही तू है, मैं नहीं।

भक्ति तो भक्त का रुदन है। भक्त के हृदय से उठी आह है। भक्ति कुछ ऐसी है कि छोटा बच्चा पुकारता है, रोता है, क्रंदन करता है तो माँ दौड़ी चली आती है और बच्चा जब रोता है तो वह अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ रोता है। उसके रोने में उसके समग्र अंग-प्रत्यंग शामिल होते हैं, रोम-रोम रोते हैं। बच्चा रोता है तो उसका हृदय तड़प उठता है, वह हृदय की गहराई से रोता है और उस क्रंदन में कुछ भी बचा नहीं रह जाता है। जब बच्चे का समग्र अस्तित्व रोता है तो माँ तड़प उठती है और वह जहाँ भी रहती है, जिस स्थिति में रहती है, वहीं से सीधे अपने बच्चे के पास दौड़ी चली आती है, देर नहीं लगाती है। ठीक उसी तरह भक्त जब रुदन करता है, उसके हृदय से आह उठती है तो भगवान सीधे उसके पास दौड़ा चला आता है। यही तो भक्त की भक्ति है।

भक्ति तो बस भक्त के आँसू हैं, जो अपने भगवान को पुकारते हुए बहते हैं। हृदय की तड़पन की अवस्था में आँखों से आँसू बनकर बरबस बहने लगते हैं। इन आँसुओं में इतनी पुकार होती है कि भगवान शांत नहीं बैठ सकते हैं और सीधे अपने भक्त की पुकार सुन, दौड़े चले आते हैं। ज्ञानी के लिए हो सकता है कि इन आँसुओं का कोई मूल्य एवं मोल न हो, लेकिन भक्त की यही थाती है, यही संपदा है, यही सर्वस्व है। वह तो अपनी पीड़ा, दरद को इन आँसुओं के माध्यम से बहाता है। भगवान अपने भक्त के आँसू पोंछने दौड़े चले आते हैं। भला छोटा बच्चा कैसे ढूँढ़े अपनी माँ को, वह तो रोएगा, माँ अपने आप ही उसे ढूँढ़ लेगी। भक्त बस रो-रोकर पुकारेगा अपने भगवान को, वे स्वयं ही उसे ढूँढ़ लेंगे। यही तो भक्ति है।

भक्त कहता है—''मैं तो बस, तेरा उपकरण मात्र हूँ। तू सुख में रखे तो ठीक, तू दुःख में रखे, तो भी ठीक। तू प्यार से रखे तो ठीक, तू घनघोर संकट में रखे, तो भी ठीक। न तो मैं सुख की आकांक्षा करूँगा और मुझे दुःख न मिले, संकट न आए—ऐसी कोई चाहत रखूँगा। अब सारा भार तेरे ऊपर छोड़ता हूँ।'' यही तो समर्पण है, इस समर्पण के साथ अहंकार गलना प्रारंभ हो जाता है। अहंकार के टूटते ही भक्त को भगवान अपना लेते हैं। अहंकार मिटते ही स्वयं का परिचय मिट जाता है, बस, केवल प्रभु ही परिचय बन जाते हैं और भक्त पहुँच जाता है। परंतु ज्ञानी के लिए वहाँ तक पहुँचने में इसलिए देरी होती है; क्योंकि ज्ञान हो जाने पर ही, बोध हो जाने पर ही अहंकार का विसर्जन होता है। भक्त पहले चरण में ही

▶युवाक्रांति वर्ष◀

अहंकार को छोड़ देता है; जबकि ज्ञानी उसे अंत में छोड़ता है। और यह ऐसा है, जैसे कोई अपनी यात्रा की समाप्ति पर बोझ छोड़ता है, परंतु कोई अपनी यात्रा से पहले ही बोझ रख देता है और जहाँ बोझ छूट जाता है—अस्मिता का, अहंकार का, वहीं उद्धार शुरू हो जाता है।

पानी का नियम नीचे की ओर बहना है, परंतु उसी पानी को जब गरम कर दिया जाता है तब उससे उठने वाली भाप ऊँचा उठने लगती है। ये दोनों ही घटनाएँ प्रकृति के नियमों के अनुसार घटित होती हैं। इनमें से एक नियम गुरुत्वाकर्षण का है। इस नियम के अनुसार, पानी का बहाव अधोगामी होता है। न्यूटन ने यह बात खोजी कि धरती प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर खींचती है। इसलिए सारी चीजें नीचे की तरफ गिरती हैं, परंतु इसके विपरीत भी एक नियम है, जिसे योगियों ने ऊर्ध्वगमन कहा है। नीचे की तरफ खींचने का प्रयास है, गुरुत्वाकर्षण, परंतु ऊपर की तरफ भी एक खिंचाव है, जिसे ऊर्ध्वगमन कहते हैं, जो भगवान की कृपा से संभव है। कर्म का सिद्धांत क्रियाशील है तो कृपा का सिद्धांत भी सक्रिय है।

प्रकृति में ये दोनों नियम सक्रिय हैं। जब कोई आदमी गिर पड़ता है, उसका पैर फिसल जाता है और जमीन पर गिर जाता है, अगर वह सोचे कि भगवान ने उसे धक्का देकर गिरा दिया है, भगवान ने ही उसके पैर को खींच दिया है, इसलिए वह गिर पड़ा है और उसकी टाँग टूट गई। तो यह एक ख्याली पुलाव है, व्यर्थ की कल्पना मात्र है। जो घटना घटी, वह तो प्रकृति के नियम के अनुसार घटी। ठीक उसी प्रकार ग्रेस का नियम या कृपा का नियम घटित होता है, जो कि ऊपर उठने का नियम है। जैसे ही अहंकार तिरोहित होता है, अहंता विसर्जित होती है, हमें ऊपर खींच लिया जाता है। यह भी नहीं कि ऊपर कोई बैठा है और हमें रस्सी से बाँधकर खींच रहा है। यह होता तब है, जब अहंकार हटता, मिटता है और ऊर्ध्वगमन की यात्रा प्रारंभ हो जाती है।

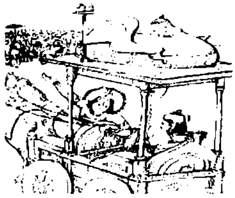
अहंकार प्रकृति का बंदीगृह है, कालकोठरी है जहाँ जीव बद्ध होता है, बेड़ियों से जकड़ा होता है, कारावास की सजा भोगता है। अहंकार से जीवात्मा को अपने स्वयं का बोध नहीं हो पाता है। उसे स्वयं का ज्ञान भी नहीं हो पाता है। इसलिए अहंकार एक भयानक रोग है। इसकी खास बात यह है कि यदि व्यक्ति सफल होता है तो उसका अहंकार भी उसी अनुपात में बढ़ता चला जाता है और वह विशाल चट्टान की भाँति जीवन के सुपथ, सत्यपथ या आध्यात्मिक पथ को रोक लेता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति असफल होता है तो उसका अहंकार एक घाव की भाँति रिसने व दुखने लगता है। साथ ही धीरे-धीरे मन में हीनता की ग्रंथि बन जाती है, जो सदा-सर्वदा डराती रहती है। अहंकार—भक्ति और ज्ञान, दोनों के लिए बाधक है, परंतु अहंकार के समाप्त होते ही प्रकृति का बंदीगृह स्वभावतः टूट जाता है। जेल के सारे दरवाजे अपने आप ही खुल जाते हैं।

आध्यात्मिक यात्रापथ में जिन्हें अपने अहंकार को बचाए रखना हो और अंत में छोड़ना हो तो वे ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं और जिन्हें अपने आप पर भरोसा होता है कि अहंकार को बचाए रखने के बावजूद अपनी यात्रा को सुचारु ढंग से चला सकते हैं, वे ज्ञानमार्ग का अनुसरण करने के लिए स्वतंत्र हैं। जिनको अपने आप को बचाना नहीं है, पहले चरण पर छोड़ देना है, उनके लिए भक्तिमार्ग सर्वथा उचित है। भक्त पहले ही चरण पर स्वयं को भगवान में विसर्जित करने की ठान लेता है। इसलिए पहले ही चरण पर उसका मिलन आरंभ हो जाता है और जितनी देर तक हम अपने अहंकार की रक्षा करते हैं, उतनी ही देर लगती है। जितनी जल्दी हम अपने अहंकार को छोड़ देते हैं, उतनी ही जल्दी यह घटना घटित हो जाती है।

हमारा आत्मिक उत्थान, हमारा आध्यात्मिक उद्धार अपने ही अहंकार के अवरोध से अवरुद्ध है। ज्ञानमार्ग का अनुसरण करें या फिर भक्तिमार्ग, दोनों के लिए अहंकार सर्वथा बाधक है। इसके अतिरिक्त और कोई भी बाधा हमारे मार्ग में नहीं है। 'मैं' के होने से परमात्मा नहीं होता और जब 'मैं' मिट जाता है, तब वह श्वास-श्वास में समा जाता है, रोम-रोम में पुलकित होने लगता है, इसलिए अपने आप को मिटाने का संकल्प कर आगे बढ़ना चाहिए। ❑

काम, क्रोध और लोभ—ये आत्मा का नाश करने वाले नरक के दरवाजे हैं। अतः इन तीनों का त्याग करना चाहिए।

—गीता जी



शब्दों को दोहराते हैं बुद्धपुरुष, ताकि चेतना पर चोट पड़े

(श्रीमद्भगवद्गीता के क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग नामक त्रयोदश अध्याय की तेरहवीं किस्त)

[त्रयोदश अध्याय की बारहवीं किस्त में तेईसवें एवं चौबीसवें श्लोक की विवेचना एवं व्याख्या की गई थी। इसके तेईसवें श्लोक में कहा गया कि जो व्यक्ति पुरुष को और गुणों सहित प्रकृति को तत्त्व से जान लेता है, वह अपने कर्त्तव्य को करता हुआ, कर्मों को पूर्ण करता हुआ फिर से जन्म नहीं लेता। फिर से जन्म लेने का कारण, बार-बार इस संसार में वापस आने व जन्म-मरण के चक्र में पड़ने का कारण कर्म नहीं है। इसका वास्तविक कारण कर्मों के साथ जुड़ी आसक्ति है। यह आसक्ति तब अंकुरित होती है, जब पुरुष प्रकृतिस्थ होता है, जब वह प्रकृति में घटित होने वाले घटनाक्रमों के मोह में पड़ जाता है। यदि ऐसा न हो, प्रकृति में होने वाले घटनाक्रमों से उसकी भावनाओं में विक्षोभ न हो, इनसे मुक्त रहकर स्वयं में स्थित रह सके, तो उसका जन्म संभव नहीं है।

ऐसा किस तरह संभव है, इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अगले यानी कि चौबीसवें श्लोक में तीन मार्गों को प्रशस्त किया—भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग एवं कर्म मार्ग। भक्ति मार्ग का संबंध हृदय से है। हृदयकेंद्र, भक्तिमार्ग को उद्घाटित करता है। ज्ञानमार्ग का उद्घाटन मस्तिष्क में स्थित सहस्त्रार केंद्र से होता है; जबकि कर्ममार्ग, कर्मों की धारा में निष्कामता से होता है। इन तीनों के लिए आवश्यकता है—शुद्ध एवं सूक्ष्म बुद्धि की। ऐसी बुद्धि, जो वासनाओं एवं स्थूलतत्त्वों से मुक्त हो। ध्यान की प्रक्रिया से बुद्धि का शुद्ध एवं सूक्ष्म होना संभव है। फिर यह शुद्ध एवं सूक्ष्म बुद्धि यदि हृदय से जुड़ी तो भक्तियोग का, यदि मस्तिष्क से जुड़ी तो ज्ञानयोग का एवं यदि कर्म की धारा से जुड़ी तो कर्मयोग का—मार्ग स्वतः ही प्रशस्त हो जाता है।]

यह प्रबोध प्रदान करने के पश्चात योगेश्वर श्रीकृष्ण आगे कहते हैं—

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥ २५॥

शब्दविग्रह—अन्ये, तु, एवम्, अजानंतः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते, ते, अपि, च, अतितरंति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः।

शब्दार्थ—परंतु (**तु**); इनसे दूसरे जो क्षीण बुद्धि वाले मनुष्य हैं, वे (**अन्ये**); इस प्रकार (**एवम्**); न जानते हुए (**अजानंतः**); दूसरों से अर्थात तत्त्व को जानने वाले मनुष्यों से (**अन्येभ्यः**); सुनकर ही-तदनुसार-(**श्रुत्वा**); उपासना करते हैं (**उपासते**); और (**च**); वे (**ते**); श्रवण परायण मनुष्य (**श्रुतिपरायणाः**); भी (**अपि**); मृत्युरूप संसार सागर को (**मृत्युम्**); निस्संदेह तर जाते हैं (**अतितरंति, एव**)।

श्रीभगवान ने अब तक बताया कि तीन बड़ी प्रखर यात्राएँ हैं—ज्ञान की, भक्ति की एवं कर्म की। ये तीनों बड़ी प्रखर यात्राएँ हैं और कोई बहुत ही जीवट के व्यक्ति इन पर चल पाते हैं। सभी लोगों के लिए इतनी प्रगाढ़ता, इतनी प्रखरता, इतनी त्वरा, इतनी तीव्रता, इतनी बेचैनी, इतनी अभीप्सा संभव नहीं है। उनके व्यक्तित्व, उनकी बुद्धिमत्ता इसके योग्य नहीं हैं। तब ऐसी स्थिति में उनके लिए क्या मार्ग है ? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर भगवान श्रीकृष्ण अपने इस वचन में देते हैं। वे कहते हैं कि ऐसे लोग इस प्रकार न जानते हुए, दूसरों से—जिन्होंने जाना है, जिन्होंने अनुभव किया है, उनसे सुनकर भी उपासना

संपन्न करते हैं और सुनने में परायण हुए वे मृत्युरूप संसारसागर को निश्चित ही तैर जाते हैं।

श्रीभगवान के इस वचन के रहस्य को, इसकी गूढ़ता को अनिवार्य रूप से आत्मसात् करने का प्रयास करना चाहिए; क्योंकि हममें से ज्यादातर व्यक्ति इन तीनों कोटियों में नहीं आ पाते। हममें से अधिकतर जनों के लिए यही चौथा मार्ग है। जो तीनों में से किसी मार्ग पर चलने की क्षमता नहीं रखते, उनके लिए श्रीभगवान यह चौथा द्वार खोलते हैं। यह मार्ग, उपासना का मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले भी अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं, वे भी मृत्यु के पार हो जाते हैं।

हालाँकि इस मार्ग पर चलने के, इस पथ पर चलने के लिए कुछ अनुबंध हैं, कुछ अनुशासन हैं। इनमें से पहला अनुबंध या अनुशासन है कि उन्हें सुनें, जिन्होंने जाना है। अगर हम स्वयं जान लें मौलिक रूप से, तब तो अति उत्तम है। इसके लिए पहले बताए गए तीन मार्ग हैं। यदि यह संभव न हो तो जिन्होंने जाना है, उन्हें सीधा सुनें। ध्यान रहे इस प्रक्रिया में शास्त्र काम न देंगे, ग्रंथ काम न आ सकेंगे। इसके लिए गुरु की अनिवार्यता है। शास्त्र के शब्द तो बासी पड़ चुके हैं, पुराने हो चुके हैं। ये ऐसे अँगारे हैं, जिन पर राख जम चुकी है। ये काम न आ सकेंगे। इसके लिए जो ताजगी, जो प्राण और जो ऊर्जा, तप की जो तपन, उष्मा व उष्णता चाहिए—वह केवल गुरु के शब्दों में मिलेगी।

श्रीगुरुमहाराज के मुख से जो शब्द निकलेंगे, उनकी जो वाणी होगी, उसमें ताजी हवा, ताजा प्राण होगा, उनके अपने अनुभव की ऊर्जा होगी। इसीलिए श्रीकृष्ण ने शास्त्र से अधिक सद्गुरु पर जोर दिया है। अधिकतर लोगों के लिए, जिनके लिए यह चौथा मार्ग है, उनके लिए गुरु का सान्निध्य, गुरु की शरण आवश्यक है। हजारों साल पहले जो शास्त्र रचे गए, ग्रंथ लिखे गए अथवा जो उपदेश उच्चारित किए गए, उनका अर्थ और मर्म भी गुरु के द्वारा ही जाना जा सकेगा। पुराने वचनों पर पड़ी धूल को केवल गुरु ही हटा सकते हैं। उन अँगारों की राख को केवल वे ही झाड़ सकते हैं।

गुरु ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें अग्नि प्रदीप्त व प्रज्वलित है। जिनके वचनों में प्राण है, जीवन है। जो अपने स्वयं के अनुभव से प्रकाशित हैं। जो कागद की लेखी का मर्म बताने के साथ अपनी आँखों की देखी को भी बताने के लिए समर्थ हैं। उनके रोम-रोम में परमात्मा का प्रकाश है, जिन्होंने अभी-अभी उसे जाना और जिया है। जो अभी-अभी परमात्मा से मिलकर हमें बताने, हमारे पास आए हैं। उनके पास बैठने की, उन्हें सुनने की हमें तैयारी करनी है।

उपासना का अर्थ भी यही है—पास बैठना। इसी से उपनिषद् शब्द बना है, इसका तात्पर्य है—पास बैठकर सुनना। ये शब्द बड़े बहुमूल्य हैं, बड़े अनमोल हैं—उपासना, उपदेश, उपनिषद्। पास बैठकर, लेकिन किसके पास? जहाँ अनुभव जीवंत है, वहाँ बैठकर सुनना। यह सुनना आसान नहीं है। पास बैठकर उन्हें सुनने के लिए पात्रता, पवित्रता अर्जित करनी होगी। ऐसा न हुआ तो हम पास बैठकर भी बहुत दूर हो जाएँगे। अगर हममें जरा-सा भी अहंकार है, तो हम पास बैठकर बहुत दूर हो जाएँगे; क्योंकि वही फासला है, वही दूरी है। स्थान की कोई दूरी नहीं है, हमारे और गुरु के बीच। स्थान दूर हो, दूरी शहरों की ही नहीं, बल्कि लोकों की भी हो, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। बस, अहंकार का अवरोध नहीं होना चाहिए।

यही अनुबंध है, यही अनुशासन है, गुरु के पास बैठने के लिए। विनम्रता, निरअहंकारिता का भाव, सीखने की तैयारी, सीखने की उत्सुकता, सीखने में बाधा न डालना। तब सुनना होगा; क्योंकि सुनना बहुत कठिन है। क्योंकि प्रायः जब हम सुनते हैं तो सुनते कम हैं और सोचते अधिक हैं। ऐसे में पास बैठना होगा चुप होकर, मौन होकर। इसलिए बहुत बार, पुरानी परंपरा तो यही थी कि शिष्य गुरु के पास जाए तो साल-दो साल कुछ न पूछे, बस, मौन होकर बैठे, सिर्फ बैठना सीखे।

सूफी साधनापद्धति में इसका स्पष्ट उल्लेख भी है कि पहले बैठना सीखो। गुरु के पास जाओ, बैठना सीखो। ज्ञान पाने की जल्दी नहीं करनी। समाधि या ज्ञान, क्षण में नहीं होता है। सूफी तो प्रायः सालों बिता देते हैं। बस, गुरु के पास झुककर बैठे रहते हैं। प्रतीक्षा करते हैं, वर्षों की। वर्षों कोई साधक जाता है नियम से, अपनी जगह आँख बंद करके बैठ जाता है। गुरु को कभी लगता है तो कुछ कह दिया और नहीं लगता तो नहीं कहता। वह अपने पास, दूसरे आने-जाने वालों से बातें करता है। शिष्य तो बस, बैठा रहता है। वह तो पास बैठा रहता है। वह दूरी मिटा देता है। उसमें, गुरु में कोई दूरी नहीं रह जाती, न विचारों की, न अहंकार की, न मत-मतांतर की, न वाद-विवाद की, न शास्त्र की।

चौथे मार्ग के लिए यही अनुबंध है। यही अनुशासन है। चौथे मार्ग के लिए बैठना सीखना होगा, मौन होना सीखना होगा, प्रतीक्षा सीखनी होगी, धैर्य सीखना होगा। गुरु का सान्निध्य पाने की अभीप्सा करनी होगी। बस, स्वयं को एक ऐसी मूर्ति के रूप में परिवर्तित करना होगा, जिसमें अब कुछ भी बचा नहीं रह गया। बाँसुरी की तरह पोला होना होगा, ताकि उसमें गुरु अपने स्वर उँड़ेल सकें। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसे सुनने के परायण हुए व्यक्ति भी, मृत्युरूप संसारसागर को पार कर जाते हैं।

इस अनूठे मार्ग का उपदेश देने के पश्चात श्रीकृष्ण अपना अगला वचन कहते हैं—

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥ २६॥

शब्दविग्रह—यावत्, सञ्जायते, किञ्चित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्, क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ।

शब्दार्थ—हे अर्जुन! (**भरतर्षभ**); यावन्मात्र (**यावत्**); जितने भी (**किञ्चित्**); स्थावर-जंगम (**स्थावरजङ्गमम्**); प्राणी (**सत्त्वम्**); उत्पन्न होते हैं (**सञ्जायते**); उन सबको तू (**तत्**); क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न (**क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्**); जान (**विद्धि**)।

भगवान श्रीकृष्ण अपने इस वचन में अर्जुन से कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ! यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर-जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान। इस प्रकार वे फिर से एक बार अर्जुन को क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ का स्मरण कराते हैं। वे कहते हैं कि जो भी पैदा होता है, वह सब क्षेत्र है। बनता है, मिटता है—वह सब क्षेत्र है और जो न बनता है, न मिटता है, न पैदा होता है, जो सिर्फ देखता है, जो केवल दर्शन मात्र की शुद्ध क्षमता है, जो केवल ज्ञान है, जो सिर्फ बोध है, जो शुद्धतम चेतना है—वही क्षेत्रज्ञ है, वही पुरुष है, वही परम मुक्ति है।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ की बात को, इसके सत्य को श्रीकृष्ण कई बार दोहराते हैं, यही नहीं और भी गीता में बहुत कुछ ऐसा है, जिसे वे कई बार कहते हैं। इस तरह से उनके कई बार ऐसा कहने के पीछे का गूढ़ अर्थ क्या है? यह सवाल मन में स्वाभाविक रूप से जग जाता है। इस विचारणीय तथ्य के बारे में यह जानना होगा कि केवल श्रीकृष्ण ऐसा नहीं करते हैं। बुद्ध ने, महावीर ने, ईसा मसीह ने भी कुछ ऐसा ही किया है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव भी यही प्रक्रिया अपनाते थे। वे भी एक ही बात को कई बार कहा करते थे। सभी अध्यात्मवेत्ताओं के, इन सभी बुद्ध पुरुषों के इस तरह से दोहराने में कुछ गूढ़ता है। यह केवल पुनरुक्ति नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। इसे यहाँ पर समझ लेना चाहिए।

जब श्रीकृष्ण या परमपूज्य गुरुदेव एक ही बात को कई बार कहते हैं, तब उनके द्वारा कहे गए शब्द भले वहाँ होते हों, लेकिन उनके प्रयोजन प्रत्येक बार भिन्न होते हैं। इसमें भिन्नता इसलिए है क्योंकि अब अर्जुन अथवा कोई और शिष्य, पहले से भिन्न हो गया है। इस बीच चेतना परिवर्तित हुई है, समझ बढ़ी है। उनकी प्रज्ञा निखरी है। अब वही शब्द उनके सम्मुख दूसरा अर्थ प्रकट कर रहे हैं।

इस सचाई की परीक्षा लेने के लिए हम यह भी कर सकते हैं कि हमें जो पुस्तक पसंद है, उसको इस साल पढ़ें और उसमें जो अच्छा लगे, उसमें निशान लगा दें। अब साल भर बाद फिर से वही पुस्तक पढ़ें। इस बार हमें हैरानी होगी कि पिछली बार जो चीजें हमें समझ में नहीं आई थीं, जिनकी हमने उपेक्षा की थी, अब वे इस बार बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम हो रही हैं, अब वे समझ में आने लगी हैं। इसका मतलब यह हुआ कि साल भर में हमारी समझ बढ़ी है। नए शब्द के अर्थ पूर्ण हो गए हैं। पुराने पड़ गए शब्द अब अपना नया अर्थ प्रकट करने लगे हैं। कुछ नई चीजें उभर कर आई हैं। यहाँ तक कि बीते साल पढ़ी गई पुरानी पुस्तक ने अब इस नए साल में अपना संपूर्ण प्रयोजन बदल दिया है।

इसीलिए भारत देश में अपनी भारतीय संस्कृति में पाठ पर जोर दिया गया है और यह पाठ सामान्य पुस्तकों का नहीं किया जाता है। पाठ के लिए कुछ विशेष ग्रंथों को चयनित किया जाता है, जैसे कि श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण अथवा भागवत या श्रीदुर्गासप्तशती। इस पाठ में और पढ़ने में अंतर है। पढ़ने का मतलब है कि एक बार पुस्तक पढ़ ली, बात समाप्त हो गई। लेकिन पाठ का मतलब है कि पुस्तक को पढ़ते ही जाना है, रोज और नियमित रूप से पढ़ते ही जाना है। हालाँकि इस पाठ में भी एक जीवंतता होनी चाहिए। हममें यह बोध होना चाहिए कि जो हम पढ़ रहे हैं, उसे समझने की हमारी क्षमता में अंतर पड़ा है अथवा नहीं।

गीता हमने कल भी पढ़ी थी, आज भी पढ़ी थी और कल भी पढ़ेंगे। बचपन में पढ़ी थी, इसे जवानी में

भी पढ़ा और वृद्धावस्था में भी पढ़ना होगा। यहाँ प्रश्न यह है कि प्रौढ़ावस्था होने पर क्या केवल हमारा शरीर ही प्रौढ़ हो सका अथवा चेतना भी प्रौढ़ हो पाई? अगर आयु के साथ चिंतन व चेतना भी प्रौढ़ हुई है तो फिर गीता में कहा गया प्रत्येक शब्द, जीवन में एक क्रांतिबीज बन जाएगा। उसकी अर्थवत्ता, गुणवत्ता बढ़ जाएगी। यह जो स्थिति गीता के बारे में कही गई है, ठीक वही स्थिति अन्य बुद्धपुरुषों के वचनों के बारे में भी है। वही स्थिति परमपूज्य गुरुदेव द्वारा लिखे गए युगसाहित्य के बारे में भी है।

इसी के साथ एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि श्रीकृष्ण व अन्य बुद्धपुरुष, अपने शब्दों से हमारे चित्त व चेतना पर बार-बार चोट करते हैं; क्योंकि हमारा मन इतना मुश्किल है कि उसमें कुछ घुसता ही नहीं है। इसलिए उसमें बार-बार चोट की जरूरत है। कौन जाने किस महत्त्वपूर्ण क्षण में यह चोट काम कर जाए और शब्द अंतरतम तक प्रवेश कर जाएँ। श्रीकृष्ण हों या परमपूज्य गुरुदेव, वे अर्जुन को और हम सबको—जीवन की परम क्रांति के लिए तैयार करना चाहते हैं। इसलिए वे अपने कहे हुए को दोहराते हैं। श्रीभगवान ने इस प्रकरण में यही किया है। उन्होंने कहा है—हे अर्जुन! वह जो भीतर क्षेत्रज्ञ बैठा है और बाहर क्षेत्र फैला है, उन दोनों के संयोग से ही सारे मन का जगत है।

जीवन के सारे सुख, सारे दुःख, प्रीति, अप्रीति, सौंदर्य, कुरूपता, अच्छा-बुरा, सफलता-असफलता, यश-अपयश—ये सब इन्हीं दो के जोड़ हैं और इन दोनों के जोड़ में यह पुरुष ही अपनी भावना से जुड़ता है। प्रकृति के पास कोई भी भाव नहीं है। प्रकृति में तो केवल विविध घटनाक्रम घटित हो रहे हैं। इन घटनाक्रमों से अपनी भावना को खींचने की आवश्यकता है। भावना को खींचते ही यह जोड़ टूट जाएगा और हम मुक्त हो सकेंगे। इस सत्य पर बार-बार चिंतन, मनन की आवश्यकता है। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का परम सत्य यही है। हमें अपनी भावना को खींचना, तोड़ना है। कर्म संपन्न करने हैं, कर्त्तव्य पूर्ण करने हैं। बस, भावना से मुक्त होना है। ऐसा करते ही परम मुक्ति हमारी है। ❑

जगदीश चंद्र बसु की नियुक्ति प्रेसिडेंसी कॉलेज में भौतिकी के प्राध्यापक के रूप में की गई। उन दिनों भारत विदेशी दासता से गुजर रहा था। इसलिए किसी भी भारतीय प्रोफेसर को अँगरेज प्रोफेसर की तुलना में दो-तिहाई वेतन दिया जाता था। जगदीश चंद्र बसु की नियुक्ति चूँकि अस्थायी थी, इसलिए उन्हें अँगरेज प्रोफेसरों की तुलना में आधा ही वेतन मिलता था। यह भेदभाव देखकर वे क्षुब्ध हो गए। उन्होंने कहा कि समान कार्य के लिए समान वेतन देना चाहिए। उनकी बात अँगरेजों ने नहीं मानी तो उन्होंने कहा—"मैं या तो समान वेतन स्वीकार करूँगा या लूँगा ही नहीं।" और उन्होंने सचमुच तीस साल तक वेतन नहीं लिया।

आर्थिक तंगी के कारण उन्हें घर का सारा सामान तक बेचना पड़ा। काम पर आने के लिए वे पत्नी सहित नाव खेकर हुगली नदी पार करते। पत्नी उन्हें छोड़कर, नाव खेकर वापस जाती और शाम को उन्हें लेने के लिए लौटकर भी आती। इन सारी कठिनाइयों के बावजूद वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। उनके साहस को देखकर अँगरेजों को हार माननी पड़ी और उन्हें अँगरेजों के बराबर वेतन देना स्वीकार किया गया। अपने दृढ़ निश्चय के दम पर वे भेदभावपूर्ण अँगरेजी नीति को बदलवाकर ही संतुष्ट हुए।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

सदा-सदा का होता है गुरु-शिष्य का संबंध



किशोर वीरेन की दृष्टि उस मुखमंडल से चाह कर भी नहीं हट पा रही थी। लंबा शरीर, उन्नत भाल, तप के तेज से उद्दीप्त मुख और उसके चारों ओर फैला हुआ एक अद्भुत-सा आभामंडल—वीरेन ने प्रयास तो बहुत किया कि वो अन्यत्र देखने का प्रयत्न करे, परंतु उसकी आँखों ने मन का साथ नहीं दिया। उसकी आँखें तो बस, टकटकी लगाकर उन्हीं दिव्य व्यक्तित्व को निहार रही थीं। वो दिव्य व्यक्तित्व और किसी का नहीं, वरन हर गायत्री परिजन के पितातुल्य परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी का था, जिनके साथ वीरेन की वह प्रथम और कभी न भूली जाने वाली मुलाकात थी।

वीरेन की स्वयं की उम्र चौदह या पंद्रह वर्ष रही होगी और वह उस दिन, अपने सहपाठियों के साथ मथुरा एक शैक्षणिक भ्रमण के उद्देश्य से आया था। उनके समूह को उनके शिक्षक श्री गोस्वामी जी, जो परमपूज्य गुरुदेव से सहस्रकुंडीय यज्ञ के समय से परिचित थे—अपने साथ लेकर गायत्री तपोभूमि, मथुरा आए थे। उनके विद्यालय का एक भ्रमण मथुरा, वृंदावन क्षेत्र का प्रस्तावित था तो गोस्वामी जी ने सोचा कि यदि इस अवसर का उपयोग आचार्य जी से विद्यार्थियों की भेंट कराने में हो जाए तो इससे ज्यादा सौभाग्य और क्या हो सकता है।

उन विद्यार्थियों को लगा कि मथुरा—मंदिरों और आश्रमों का क्षेत्र है और इसीलिए उनके मास्साब उन्हें किसी आश्रम में ले जा रहे हैं। तपोभूमि में प्रवेश करते ही द्वार पर खड़े सत्यभक्त जी उन्हें शीघ्रता के साथ परम पूज्य गुरुदेव से मिलाने ले गए, क्योंकि पूज्य गुरुदेव कहीं बाहर निकलने की तैयारी में थे। तय हुआ कि पूज्य गुरुदेव चलते-चलते ही विद्यार्थियों से पंद्रह-बीस मिनट की मुलाकात कर लें तो संभवतया उन विद्यार्थियों को जीवन की नई दिशा मिल सके।

अन्य विद्यार्थियों पर उस भेंट का क्या प्रभाव पड़ा, यह तो नहीं कहा जा सकता, परंतु उस समूह में खड़े वीरेन को लगा कि उसने जैसे स्वयं भगवान को ही देख लिया हो। आत्मीयता से भरी हुई उनकी दृष्टि, ज्ञान के शिखर से अवतरित होते उनके वाक्य, प्रेम से स्निग्ध उनकी वाणी, तप के तेज से दग्ध उनका व्यक्तित्व—सब कुछ ऐसा था, जैसा उसने अपने दादाजी के मुख से ऋषियों का वर्णन सुनते समय अनुभव किया था।

पूज्य गुरुदेव का परिचय देते हुए गोस्वामी जी ने कहा कि गुरुदेव अकेले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने गायत्री के २४ महापुरश्चरण संपन्न किए हैं। २४ वर्ष तक प्रत्येक दिन न्यूनतम ६ घंटे की साधना करने वाले वे अकेले व्यक्ति हैं। गुरुदेव ने उनके परिचय को बीच में रोक दिया और विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए बोले—"बेटा! हमारे अब तक के जीवन में पंद्रह वर्ष का आरंभिक जीवन आप लोगों की तरह का रहा है। शेष का जीवन हमने आध्यात्मिक प्रसंगों को अपने जीवनक्रम में उतारने में लगाया है।"

थोड़ा रुककर गुरुदेव बोले—"जो हम पा पाए, उसमें पूजा-उपासना का योगदान रहा है, पर उतना नहीं, जितना सामान्य व्यक्ति अनुमान लगाता है। पूजा-उपासना को महत्त्व दिया जाना चाहिए, परंतु उतना नहीं, जितना कि मानसिक परिष्कार और भावनात्मक उत्कृष्टता के अभिवर्द्धन के प्रयासों को। हम अपनी साधना में यदि सफल हो पाए हैं या कुछ ऐसा अर्जित कर पाए हैं, जिसे अलौकिक कहा जा सके तो उसका मुख्य कारण हमारे अंतरंग और बहिरंग के परिष्कार को ही माना जाना चाहिए। बिना अपने व्यक्तित्व को सँवारे, पूजा-उपासना व्यर्थ रह जाती है, निरर्थक सिद्ध होती है।"

जो बातें पूज्य गुरुदेव कह रहे थे, वो उन विद्यार्थियों के लिए सर्वथा नवीन थीं। उन्होंने तो अब तक मंत्रों को रटना और उन्हें तोते की तरह दोहराना—यही जाना था। जीवन को सँवारना, व्यक्तित्व को बदलना, चिंतन को परिमार्जित करना—ये सारी बातें तो आज वे पहली बार सुन रहे थे। गुरुदेव आगे कह रहे थे—"बेटा! आप लोगों को यदि सच्चे अध्यात्म की अभीप्सा है तो तीन सूत्रों को मन में गहरे बिठा लीजिए—**मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्** एवं **आत्मवत् सर्वभूतेषु**।"

थोड़ा ठहरकर पूज्य गुरुदेव बोले—"भारतीय अध्यात्म की सारी उपलब्धियाँ इन्हीं तीन सिद्धांतों के

▶युवाक्रांति वर्ष◀

आधार पर खड़ी हैं। चिंतन की उत्कृष्टता, चरित्र की प्रामाणिकता और व्यवहार में सदाशयता—ये तीनों गायत्री के तीन चरण कहे जा सकते हैं और इन तीन सूत्रों में भी भारतीय संस्कृति का यही चिंतन समाया हुआ है। यदि इन सूत्रों को जीवन में साकार करना है तो श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा को जीवन में उतारने की आवश्यकता है।

"श्रद्धा का अर्थ है—परिपूर्ण विश्वास। जिस पर आपका भरोसा हो जाए, उसके दिए गए जीवन उद्देश्य को बिना किसी शंका-कुशंका, तर्क-वितर्क के मानना—श्रद्धा के द्वारा ही संभव है। प्रज्ञा का अर्थ है—स्वविवेक। जो स्वयं भ्रांतियों के शिकार होते हैं, वे जीवन दिशाहीन जीते हैं और उनके कृत्यों में कोई संकल्प मूर्तिमान नहीं हो सकता है। प्रज्ञा का अवतरण होता है, तो विवेक का प्रकाश भी जीवन में आता है। निष्ठा का अर्थ है—संपूर्ण समर्पण के साथ की जाने वाली नित्यप्रति की क्रिया। मन में विश्वास हो, चिंतन में स्पष्टता हो और जीवन निर्धारित दिनचर्या के साथ चल रहा हो तो समस्त आयामों में सफलता एवं संतुष्टि हस्तगत होती है।"

इतना कहकर पूज्य गुरुदेव ने अपने स्थान पर खड़े होकर सभी को प्रणाम किया और तेज कदमों से वहाँ से निकल लिए। जितनी देर उनके मुख से शब्द निस्सृत होते रहे, उस पूरे वातावरण में एक ऐसी विलक्षण शांति और गंभीर नीरवता व्याप्त थी कि मानों पृथ्वी ने अपनी धुरी पर घूमना ही बंद कर दिया हो। समय ठहरा हुआ था और पल भी मौन थे। इस पूरी अवधि में वीरेन टकटकी लगाकर गुरुदेव को ही निहारता रहा। मन-ही-मन उसने निश्चय कर लिया कि वह गुरुदेव से दीक्षा लेकर ही मथुरा से लौटेगा।

वीरेन ने अपनी इच्छा से गोस्वामी जी को अवगत कराया तो उन्होंने इस हेतु अपनी सहर्ष सहमति व्यक्त की और बोले—"बेटा! गुरुदेव तीन दिन के उपरांत वापस लौटेंगे और उसके अगले दिन प्रातःकाल के यज्ञ के समय दीक्षा देंगे। तुम यहीं आगे की पंक्ति में बैठ जाना और दीक्षा ग्रहण कर लेना।" वीरेन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वो तीन दिन एक अनजानी-सी खुशी व प्रसन्नता के भावों से भरा रहा। तीन दिन के कार्यक्रम के उपरांत गुरुदेव मथुरा लौटे और दीक्षा की व्यवस्था बनी तो वीरेन प्रातः तीन बजे से ही आकर अपने स्थान पर बैठ गया।

दीक्षा के क्रम में पूज्य गुरुदेव सभी दीक्षा लेने वालों को संबोधित करते हुए बोले—"मित्रो! दीक्षा लेने के पीछे लोगों का मनोभाव यह होता है कि गुरु हमारे सिर पर हाथ रखकर शक्तिपात कर देंगे तो चमत्कार हो जाएगा। गुरु सिर पर हाथ रखेंगे तो बिजली के प्रवाह की तरह कोई करंट हमारे शरीर में प्रवाहित हो जाएगा, कुंडलिनी जाग जाएगी—ऐसा लोग समझते हैं। पर शक्तिपात का अर्थ ऐसे किसी करंट के बहने से नहीं है। शक्तिपात का अर्थ है—अंतरंग की पवित्रता और पात्रता का विकास।

गुरुदेव आगे बोले—"मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ सकता। गिलास उलटा रखा हो तो सारे बादल मिलकर भी वर्षा करें फिर भी उसे भर नहीं सकते। खिड़कियाँ बंद हों, तो सूरज की किरणें बाहर से ही लौट जाती हैं। दीक्षा का उद्देश्य मात्र गुरु द्वारा अपनी भूमिका का निर्वहन करना नहीं है, वरन शिष्य द्वारा अपने शिष्यत्व को सार्थक करना भी है। हजारों वर्षों में कभी कोई गुरु ऐसा आता है, जो शक्ति देने की पात्रता रखता है और ऐसा शिष्य पैदा होता है, जो उसे संगृहीत कर सुनियोजित दिशा दे सके। इस दीक्षा के माध्यम से आप सबमें शिष्यत्व विकसित हो, ऐसी मेरी कामना है।"

गुरुदेव के शब्द, किशोर वीरेन के हृदय में गहरे उतर गए। दीक्षा लेने के उपरांत उसे लगा कि दक्षिणा का क्रम संपन्न करना चाहिए। जेब में चौदह रुपये थे—सोचा कि लौटने के किराये के तीन रुपये बचाकर शेष ग्यारह रुपये गुरुदेव के चरणों में चढ़ा देने चाहिए। यह सोचकर गुरुदेव के चरणस्पर्श किए और वे रुपये वहाँ चढ़ा दिए और आगे को बढ़ गया। गुरुदेव ने वीरेन को नाम लेकर बुलाया और बोले—"बेटा! बच्चे माता-पिता को नहीं देते, माता-पिता बच्चों को देते हैं। अभी तुम्हारी देने की उम्र नहीं है, लेने की है। जब लौटाना हो तो समाज की सेवा करके लौटा देना।"

इतना कहकर उन्होंने वीरेन के दिए ग्यारह रुपये उसके हाथ में रखे और एक रुपया ऊपर से रख दिया। मात्र इतना ही वीरेन के हृदय को स्पर्श करने के लिए पर्याप्त था, पर जो अंतिम पंक्तियाँ गुरुदेव ने कहीं, वो उसे सदा उनका बना गईं। गुरुदेव बोले—"बेटा! गुरु-शिष्य का संबंध ब्याहता दुलहन और पति का होता है। दुलहन डोली पर चढ़कर आती है और अरथी पर निकलती है। विश्वास एक बार होता है और उसे जन्मांतरों तक निभाना पड़ता है। इतना कर सके तो तू मेरा और मैं तेरा।" ❑

▶युवाक्रांति वर्ष◀

चलते-फिरते तीर्थ होते हैं संत



वर्तमान समय में भौतिकता अपने चरम पर है। भौतिकता की दलदल में मनुष्य दिन-प्रतिदिन और अधिक धँसता चला जा रहा है। कहीं भी कोई किनारा नहीं दिख रहा। व्यक्ति के कष्ट, क्लेश, दुःख—बदस्तूर बढ़ते ही चले जा रहे हैं। मनुष्य का स्वयं के ऊपर कोई नियंत्रण नहीं रह गया। जीवन में संयम, सेवा, सहिष्णुता के लिए कोई स्थान नहीं दीखता। फलस्वरूप व्यक्ति हर दिन उच्छृंखलता के नए कीर्तिमान गढ़ने में लगा है। उचित-अनुचित की परवाह किए बिना व्यक्ति, सरपट घोर तमस् की ओर बढ़ता चला जा रहा है। मानवीय संबंध लगातार सिकुड़ रहे हैं। संचार क्रांति के कारण भौगोलिक दूरियाँ भले ही घट रही हों, पूरा विश्व एक गाँव बन गया हो, परंतु दिलों की दूरियाँ बढ़ती ही जा रही हैं।

कहने को हम शिक्षित व समझदार हो गए हैं। बीते दशकों में जीवन के हर क्षेत्र में हमने तरक्की व प्रगति की है। अब तो हम अंतरिक्ष में रहने के सपने देख रहे हैं, पर धरती पर मनुष्य की तरह रहना ही भूल गए हैं। फेसबुक पर हर दिन हमारे फॉलोअर बढ़ रहे हैं, पर अपने पड़ोसी के बारे में ही हमें कुछ पता नहीं है। किसी ने ठीक ही कहा है—

अंतरिक्ष खगोल पर
अब राज होता जा रहा है।
हर उपग्रह अब हमारे
निकट आता जा रहा है।
क्या बता पाएँगे
इस संचार युग में,
आदमी मुँह मोड़ क्यों
स्वयं में सिमटता जा रहा है ?

आज जीवन के हर क्षेत्र में पतन व पराभव का साम्राज्य है। मानवता हर दिन स्वयं मानव से ही हार रही है। व्यक्ति के जीवन में हताशा और निराशा है तो पारिवारिक जीवन में हर रोज गृहयुद्ध छिड़ रहे हैं। सामाजिक जीवन में शुचिता नहीं है तो सार्वजनिक व राष्ट्रीय जीवन में भी नैतिकता अंतिम साँसें ले रही है।

जीवन है, पर जीवनमूल्य ही नहीं हैं। व्यक्ति है, पर व्यक्तित्व ही नहीं है। चित्र है, पर चरित्र ही नहीं है। चिंता है, पर चिंतन ही नहीं है। नीति है, पर नीयत ही नहीं है। संसार है, पर संस्कार ही नहीं है। जीवन में वेदना है, पर संवेदना ही नहीं है। मनुष्य की आकृति है, पर प्रकृति नहीं है। अर्थ का उपार्जन है, पर अध्यात्म का अर्जन नहीं है। बुद्धि है, पर सद्बुद्धि नहीं है। ऐसा लगता है मानों हर ओर मरघट-सा सन्नाटा हो। ऐसी स्थिति में भला मनुष्यता को कौन सही राह दिखा सकता है ?

निश्चित ही कोई ऐसा व्यक्ति जो मनुष्यता की साक्षात् प्रतिमूर्ति हो, जिसके अंदर मनुष्यता, आध्यात्मिकता अपने चरम शीर्ष पर हो, जिसका जीवन अध्यात्म के प्रकाश से पूर्णतः आलोकित हो चुका हो—संतों के सिवा भला ऐसा कौन हो सकता है ? देवभूमि भारत में संतों की महान परंपरा रही है। उन्होंने हर युग में व्यक्ति का, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का और मनुष्यता का मार्गदर्शन किया है। इसलिए सामान्य जन के अलावा बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी संतों के पास मार्गदर्शन पाने के लिए जाया करते थे। राजा दशरथ के विषय में मानसकार ने लिखा है—

गुर गृह गयउ तुरत महिपाला।
चरन लागि करि बिनय बिसाला॥
निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ।
कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥

अर्थात राजा दशरथ तुरंत अपने गुरु के घर गए और चरणों में प्रणाम कर उन्होंने बहुत स्तुति की। उन्होंने अपना सारा सुख-दुःख गुरु को कह सुनाया। वसिष्ठ जी ने उन्हें बहुत तरह से समझाया और कहा कि धीरज रखो।

जब तक संतों से मार्गदर्शन पाने की पावन पुण्य परंपरा बनी रही—व्यक्ति, परिवार व समाज में विकार नहीं, संस्कार छाया रहा, चहुँ ओर सुख-शांति व सद्भाव का वातावरण बना रहा। ऐसा इसलिए क्योंकि सत्य के स्पर्श से ही व्यक्ति, परिवार व समाज में संस्कारों व

सद्भावों का जागरण होता है। संत होने का अर्थ ही है—जिन्होंने सत्य को जान लिया है, जिन्होंने सत्य का स्पर्श पा लिया है, जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, जिन्होंने तप की अग्नि में निज की वासनाओं, कामनाओं को सदा-सदा के लिए भस्मीभूत कर लिया है एवं जिन्होंने अज्ञान, अभाव व आसक्ति से मुक्ति पा ली है।

जिनके हृदय में स्पंदन है, पर स्वयं के जीवन के लिए नहीं, औरों के लिए है, जिनके चित्त की लहरें सदा-सदा के लिए शांत हो गई हैं, जो अपने आत्मस्वरूप में सदा-सदा के लिए स्थित हो गए हैं, जिनके लिए न तो कोई अपना है, न ही पराया, सर्वत्र समभाव की दृष्टि है—वे ही संत कहलाते हैं। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि, योगसूत्र १/३ में कहते हैं—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध होते ही द्रष्टा अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। आत्मस्वरूप में स्थित होते ही संत के चित्त से पवित्रता, ज्ञान व प्रेम की धारा फूट पड़ती है। उस गंगोत्तरी की निर्मल धारा, जन-जन के चित्त को आप्लावित करती हुई इस धरा-धाम पर ही मानों स्वर्ग उतार लाती है और देखते-देखते समाज में चहुँ ओर शांति, सद्भाव व प्रेम का वातावरण विनिर्मित होने लगता है। तब वे व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व हो जाते हैं। तब वे संसार में होते हैं, पर संसार उनमें नहीं होता है। उनके पास भौतिक साधन न भी हों, परंतु उनकी समृद्धि व सामर्थ्य किसी शहंशाह से कम नहीं होती है। इसी सामर्थ्य के कारण कभी मुगल बादशाह अकबर को मीरा की कृष्णभक्ति के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। महर्षि वसिष्ठ की इसी सामर्थ्य के सामने राजा विश्वरथ को कभी नतमस्तक होना पड़ा था। उन्हें यह स्वीकार करना ही पड़ा था—

धिक् बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलं।

अर्थात भौतिक बल नहीं, बल्कि ब्रह्मतेज का बल ही असली बल है। संत की बादशाहत ऐसी कि अपनी करुणा व ज्ञान के अमृत से पूरी वसुधा को तृप्त कर सकें। तब उनका अपना कोई आश्रय नहीं होता, पर वे पूरे जगत को आश्रय देने लगते हैं। तब उनकी जुबाँ नहीं बोलती, बल्कि पूरा जीवन ही बोलता है। तब वे मात्र व्यक्ति नहीं रह जाते, बल्कि विश्वव्यापी विचार बन जाते हैं। महान साहित्यकार एच० डब्ल्यू० लांगफेलो के वचनों को किसी ने ठीक ही अनुवादित किया है—

महत् जनों का जीवन,
प्रतिपल देता है संदेश सभी को।
हम भी महिमामय कर सकते,
अपने से छोटे जीवन को॥

संत आनंद में नहीं, परमानंद में स्थित हो जाते हैं। उनकी आकुलता-व्याकुलता भी स्वयं के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए होती है। मानसकार ने लिखा है—संत हृदय नवनीत समाना। अर्थात संतों का हृदय नवनीत के समान होता है। जैसे गरमी पाते ही नवनीत (मक्खन) पिघल जाता है, वैसे ही दूसरों की पीड़ा देखते ही संत द्रवित हो उठते हैं। अतः संतों का सान्निध्य हर दृष्टि से श्रेयस्कर है। मानव मात्र के लिए हितकारी व मंगलकारी है। इसलिए मानसकार ने संतों को चलता-फिरता तीर्थ कहा है—

मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

अर्थात संतों का समाज, आनंद व कल्याणमय है, जो संसार में चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है। वहाँ यदि रामभक्तिरूपी गंगा की धारा है तो ब्रह्मविचार का प्रचार सरस्वती है।

ऐसे संत कभी मठ-मंदिर बनाने का अभियान नहीं, बल्कि मनुष्य को मनुष्य बनाने का अभियान चलाते हैं। वे व्यक्ति के वेश-विन्यास नहीं, व्यवहार बदलने का अभियान चलाते हैं। वे चमत्कार नहीं, सन्मार्ग दिखाते हैं। वे धर्म का धंधा नहीं, धर्म की ध्वजा फहराते हैं। वे साधु होते हैं, स्वादु नहीं। वे हंसों में राजहंस होते हैं, बगुलाभगत नहीं। वे संप्रदाय का सृजन नहीं, विध्वंस करते हैं। जाति-धर्म, संप्रदाय के नाम पर बनी दीवारों का विध्वंस करते हैं। मनुष्यता को समग्र रूप में पुष्पित, पल्लवित होने के लिए खुली हवा में साँस लेने हेतु खुली धरती और आसमान देते हैं। वे व्यक्ति की आकृति नहीं, प्रकृति में परिवर्तन लाते हैं। भौतिक नहीं, आध्यात्मिक क्रांति लाते हैं। तब व्यक्ति के वेश-विन्यास में नहीं, व्यवहार में परिवर्तन होता है।

संतों की इसी पावन पुण्य-परंपरा में कभी कबीरदास, रविदास, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि संतों ने ज्ञान, कर्म व भक्ति की अलख जगाई। संत रविदास और कबीर ने कपिल, कणाद, बादरायण और

▶युवाक्रांति वर्ष◀

शंकराचार्य जैसे धुरंधर दार्शनिकों के दर्शन को लोकभाषा में गाया। आधुनिक युग में श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महर्षि रमण, परमहंस योगानंद, स्वामी शिवानंद, स्वामी सत्यानंद सरस्वती व युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य आदि संतों, योगियों ने समष्टिगत हित में युगानुरूप, युग की समस्याओं का सामयिक समाधान दिया। सत्यम् शिवम् सुंदरम् का प्रसार किया। मानव में देवत्व का उदय व धरती पर स्वर्ग के अवतरण की राह दिखाई। अत: विचार व ज्ञानशरीर के रूप में संतों की महान विरासत आज भी हमारे लिए सहज है, सुलभ है। इस महान विरासत के रहते हुए भी कोई दीन-हीन बना कैसे रह सकता है? क्योंकि इस विरासत को पाकर व सन्मार्ग पर चलकर अब तक कोटिश: लोगों ने स्वयं को व समाज को धन्य-धन्य किया है। अत: आवश्यकता उस राह पर, राजमार्ग पर चलने की है। इस मार्ग पर चलकर हम भी भौतिकता की अंधी दौड़ से बाहर निकल, अध्यात्म के अलौकिक प्रकाश से अपने जीवन को आलोकित व धन्य-धन्य कर सकते हैं। सच कहें तो इसी में संपूर्ण मानवता का, विश्व-वसुधा का समुज्ज्वल भविष्य है। ❑

प्रसिद्ध संत श्रीकिंकर जी महाराज, गुजरात के एक गाँव में पहुँचे। वहाँ अनेक लोग उन्हें अपने घर ले चलने के लिए जिद करने लगे। कई सेठ-साहूकार उन्हें अपने साथ ले जाना चाहते थे, परंतु उन्हें छोड़कर श्रीकिंकर जी महाराज ने एक कुंभकार के घर जाना स्वीकार किया। वह भक्त कुंभकार उन्हें बड़े आदर के साथ अपने घर ले गया और उनको भोजन परोसने लगा। उसकी पत्नी संत जी के पास बैठकर उन्हें पंखा झलने लगी। संत जी की दृष्टि महिला के पैरों पर पड़ी तो वे समझ गए कि कुंभकार की गृहिणी अपंग है। उन्होंने प्रेम से पूछा—''बेटी! अपंगता के कारण घर के कार्यों को करने में कठिनाई होती होगी?'' वह बोली—''नहीं महाराज! मैं बैठे-बैठे भोजन बनाती हूँ, बरतन माँजती हूँ, घर का आँगन लीपती हूँ और भगवान की पूजा करती हूँ। इन्हें केवल पानी भरना होता है।''

संत श्रीकिंकर जी महाराज ने उसके पति से पूछा—''तुमने इससे क्यों विवाह किया था?'' वह बोला—''महाराज! मैंने सोचा कि जीवन सेवा में लगाना चाहिए तो मैंने इससे विवाह करने का निश्चय किया। मैंने इसे कभी दु:ख नहीं दिया, हमेशा हर कार्य में सहयोग देता हूँ। मैंने इसे तीर्थयात्रा कराई है। पालीताणा के मंदिरों में दर्शन कराने ले गया तो कंधे पर बिठाकर पहाड़ी तक पहुँचाया। हम दोनों एकदूसरे के सहयोग से जीविकोपार्जन व भगवान की भक्ति में लगे रहते हैं।'' संत श्रीकिंकर जी महाराज उन दोनों आदर्श पति-पत्नी को देखकर उनके सम्मुख नतमस्तक हो गए और बोले—''जहाँ तुम दोनों जैसे पति-पत्नी होते हैं, वहाँ गृहस्थी सदा सुखमय ही होती है।''

▶युवाक्रांति वर्ष◀

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—२

कैसे प्राणवान बने साधना?



(गतांक से आगे)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस ऐतिहासिक उद्‌बोधन में साधना के विषय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि उपासना, साधना का उद्‌देश्य मात्र मंत्रों का उच्चारण करना नहीं होता, वरन अपने व्यक्तित्व का समग्र परिष्कार करना होता है। जब तक व्यक्तित्व का परिष्कार नहीं होता, तब तक साधना में प्राण नहीं आ पाते हैं। इसी चिंतन को आगे बढ़ाते हुए परमपूज्य गुरुदेव आहार के संयम व विचारों के परिष्कार पर भी जोर देते हैं। वे कहते हैं कि इन सभी निर्देशों को जीवन में उतारने पर ही साधना प्राणवान बन पाती है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को..............

कैसे हो भगवान का साक्षात्कार

मित्रो! ब्रह्मवर्चस में उस दिन मैंने आपको प्रारंभ में यह बताया था कि मंत्रविद्या, जो हमारा मूल विषय है, मंत्रशक्ति, जो दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति है, उसका उपार्जन करने के लिए, उसका लाभ और चमत्कार देखने के लिए उसमें खाद और पानी का इंतजाम करना चाहिए। पानी के बारे में हम आपको बता चुके हैं। जीभ का परिष्कार करने की तैयारी कीजिए। जीभ से लोहा लेना शुरू कीजिए, लड़ाई कीजिए, जीभ की सिद्धि कीजिए। जीभ की साधना कीजिए, जीभ का योगाभ्यास कीजिए। जीभ की देवी, सरस्वती की साधना कीजिए। सरस्वती के साथ साधना कीजिए, उसके बाद में गाड़ी चल सकती है।

महाराज जी! फिर तो गायत्री माता पीछे आएँगी? हाँ बेटे! गायत्री माता पीछे आएँगी। पहले नहीं आ सकतीं? हाँ बेटे, पहले नहीं आ सकतीं। पहले सरस्वती की साधना कीजिए, फिर उसके बाद में गायत्री-साधना भी हो सकती है। आप यह क्या कह रहे हैं? बेटे, यह इसलिए कह रहा हूँ कि गोस्वामी तुलसीदास जो थे, उनको रामचंद्र जी की भक्ति करनी थी। रामचंद्र जी का साक्षात्कार करने का उनका मन हुआ कि भगवान का साक्षात्कार करना चाहिए।

मित्रो! रामचंद्र जी का साक्षात्कार करने का जब उनका मन आया, तो किसी गुरु ने उनको यह बताया कि आप सीधे रामचंद्र जी तक नहीं पहुँच सकते। क्या करना चाहिए? पहले आप हनुमान जी के पास जाइए। हनुमान जी उनके पी०ए० हैं। किनके? रामचंद्र जी के वे सेक्रेटरी हैं। वे अगर आपकी रिकमन्डेशन मंजूर करेंगे, तो मुलाकात हो सकती है। नहीं तो सेक्रेटरी की मंजूरी के बिना भगवान जी मिलेंगे नहीं। हनुमान जी के पास जाना चाहिए। हनुमान जी के पास हम कैसे जाएँ? हनुमान जी के दर्शन हो जाएँ, तो उनसे कहेंगे कि आप हमें रामचंद्र जी से मिला दीजिए। वे हनुमान जी को मिलने के चक्कर में बहुत दिनों तक फिरते रहे। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित्र की बात मैं कह रहा हूँ।

तुलसीदास जी की भगवान से भेंट की कथा

कहा जाता है कि गोस्वामी जी जब शौच फिरने जाते थे, तो पानी का लोटा ले जाते थे। शौच के बाद जो पानी बच जाता था, तो पास में बेर का एक पेड़ था, पानी उस पर डाल देते थे। यह उनका रोज का क्रम था। इस तरह से वे रोज उस पर पानी डालते रहे। उन बेचारों को तो मालूम ही नहीं था। संयोगवश वहीं डाल देते थे। बहुत दिन हो गए पानी डालते। एक दिन बेर के पेड़ में से एक भूत निकल आया। भूत ने कहा— मैं

▶युवाक्रांति वर्ष◀

तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। क्यों भाई साहब! आप हमसे क्यों प्रसन्न हैं? इसलिए प्रसन्न हैं कि हम प्यास के मारे मरे जाते थे। अच्छा पानी हम पी नहीं सकते थे और गंदा पानी तलाश करते थे तो वह कहीं मिलता ही नहीं था। आपने टट्टी का पानी रोज यहाँ डाला, जिसको पीकर हमारी प्यास बुझ गई। हम बहुत प्रसन्न हैं। आप वरदान माँगिए।

मित्रो! गोस्वामी तुलसीदास जी का लिखा हुआ जीवन चरित्र बता रहा हूँ। उन्होंने कहा—भाई साहब! आप कौन हैं? हम तो भूत हैं। अच्छा आप भूत हैं, तो क्या आप ऐसी कृपा कर सकते हैं कि हमको हनुमान जी मिल जाएँ, ताकि हम उनके माध्यम से रामचंद्र जी से मिल सकें। हाँ साहब! हम आपको हनुमान जी से मिला देंगे। देखिए, एक जगह पर रामकथा होती है। वहाँ पर हनुमान जी कोढ़ी का रूप बनाकर के आते हैं और चुपचाप बैठे रहते हैं। वहाँ पर जो व्यक्ति कोढ़ी जैसा रूप बनाकर कंबल ओढ़े हुए बैठा दिखे; उसको पकड़ लेना, वही हनुमान जी हैं। अच्छा आप पक्की बात कहते हैं? हाँ, बिलकुल पक्की बात कहते हैं।

बस, गोस्वामी तुलसीदास जी गए और उस कोढ़ी को पकड़ लिया। अरे भाई! छोड़। अरे बाबा! अब मैं आपको छोड़ने वाला नहीं हूँ। रोज कोढ़ी का रूप बनाकर आ जाते हैं। आप हनुमान जी हैं। नहीं भाई! हनुमान जी नहीं हैं। नहीं साहब! आप हनुमान हैं। हमसे एक भूत ने कहा था कि आप हनुमान जी हो सकते हैं। हनुमान जी ने कहा— अच्छा हम हनुमान जी हैं, तो क्या बात है? हमको कैसे पकड़ लिया? इसलिए पकड़ लिया कि आप रामचंद्र जी से मुलाकात करा दीजिए। बस, उसके बाद में रामचंद्र जी आए और तिलक लगाया। आगे की कथा आप सबको मालूम है।

ऐसे होगा गायत्री माँ का साक्षात्कार

मित्रो! मैं कथा कह रहा हूँ, आपको उदाहरण दे रहा हूँ। एक एक्जांपल पेश कर रहा हूँ कि आपको क्या करना चाहिए? गायत्री माता का साक्षात्कार करना चाहिए। गायत्री माता का साक्षात्कार करने के लिए पहले आप भूत को पकड़िए, फिर हनुमान जी को पकड़िए, तब बात बनेगी। तब गायत्री माता मिलेंगी। अच्छा तो गायत्री माता ऐसे मिलेंगी? बेटे, ऐसे नहीं मिलेंगी। अच्छा महाराज जी! यह कौन-सा भूत है? वह भूत बेटे, तेरी जीभ है। तेरी जीभ काबू में आ गई, तो फिर समझना कि तेरा मन साफ हो गया। जीभ काबू में नहीं आई तो तेरा मन साफ नहीं होगा। जीभ से आप मंत्र बोलते हैं, इसलिए सबसे पहले जीभ का परिशोधन करना आवश्यक है।

आप उपासना करते हैं, हवन करते हैं, तो नहा करके बैठते हैं। यज्ञ कौन करती है? बेटे, हमारे मुँह में बैठी हुई पार्वती करती है। जीभ का नाम क्या है? उसका नाम है— पार्वती। शंकर को प्राप्त करने के लिए पार्वती ने अपनी गुफा में बैठकर तप किया था। आप रामायण के बालकांड में पढ़ सकते हैं। तप करने के बाद में शंकर जी प्रसन्न हुए थे और प्रसन्न हो करके उनसे ब्याह करने के लिए रजामंद हुए थे।

मित्रो! हमारी जीभ क्या है? यह पार्वती है। उसको आपने यदि तप करने के लिए रजामंद कर लिया, फिर आप विश्वास रखिए कि आपकी जीभ का ब्याह, आपकी सरस्वती का ब्याह, आपकी पार्वती का ब्याह ब्रह्म से हो सकता है, शिव से हो सकता है, कल्याण से हो सकता है। उसका नतीजा क्या निकलेगा? उसका नतीजा यह निकलेगा कि आपके अंतरंग में गणेश का जन्म होगा। गणेश कौन होता है? ऋद्धियों-सिद्धियों का देवता। गणेश जी की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम था—ऋद्धि और एक का नाम था—सिद्धि।

विवेक व आत्मबल का प्रतीक हैं भगवान गणेश

गणेश कौन होता है? हमारा विवेक ही गणेश है। जब यह जाग्रत होगा तो इसकी दो औरतें होंगी। उनमें से एक का नाम ऋद्धि होगा और दूसरी का नाम सिद्धि होगा। ऋद्धि क्या होती है? ऋद्धि बेटे, आंतरिक विभूतियों को कहते हैं और सिद्धि? सांसारिक सफलताएँ सिद्धियाँ कहलाती हैं और आंतरिक विशेषताएँ—आत्मबल से लेकर अच्छे गुणों की संपदाएँ, ऋद्धियाँ कहलाती हैं। ऋद्धि और सिद्धि कौन थीं? गणेश जी की औरतें थीं। अच्छा गणेश जी कौन थे? शिव और पार्वती ने जब ब्याह कर लिया था, तो उस विवाह के फलस्वरूप जो बच्चा पैदा हुआ था, उसका नाम था—गणेश।

मित्रो! गणेश माने आत्मबल। आपका यह आत्मबल कब पैदा हो सकता है? जब आपके अंदर शिव और शक्ति का उदय हो जाएगा, तब। शक्ति कौन हैं? पार्वती हैं। पार्वती से क्या मतलब है? बेटे, पार्वती ने तप किया था और आपको न मालूम हो और आपको हरिद्वार जाना हो, तो वहाँ एक महादेव हैं—विल्वकेश्वर महादेव। आप वहाँ देख आना, वहाँ एक ऐसा मंदिर बना हुआ है, जहाँ

▶युवाक्रांति वर्ष◀

पार्वती जी ने तप किया था। तप करने के बाद में महादेव जी प्रसन्न हुए थे। बिना तप किए महादेव जी प्रसन्न हो सकते थे? बिना तप के वे प्रसन्न नहीं हो सकते। पार्वती जी ने क्या किया था? उन्होंने 'नमः शिवाय' के साथ-साथ में तप किया था। तप की बारूद लेकर के 'नमः शिवाय' की आग मिला दी जाती है, तब धमाका हो सकता है, उससे कम में नहीं होता।

मित्रो! जीभ के लिए मैंने आपसे निवेदन किया था कि अगर आप मंत्र का चमत्कार देखना चाहते हैं, तब कृपा करके अपनी जीभ को धोइए। गायत्री महामंत्र की विशेषताओं से अगर आपको लाभ लेना है, तो आप अपनी जीभ पर हावी हो जाइए। जीभ पर क्या करना चाहिए? जो आप कर रहे हैं, वह सरल और सुगम है, स्थूल है। आप नमक छोड़ देंगे, तो मरेंगे नहीं आप विश्वास रखिए। गुरुजी! हम नमक नहीं खाएँगे, तो मर जाएँगे। बेटे, नमक खाकर के मर जाएगा, तो घरवालों को कह देना कि हम नमक छोड़ रहे हैं और हमको यह शक है कि हम मर जाएँगे। साथ में यह भी कह देना कि गुरुजी ने गारंटी ली है कि जो कोई भी नमक न खा करके मरेगा, उसको हम जिंदा कर देंगे।

स्वाद के लिए नहीं, आरोग्य के लिए खाएँ

यह सरल है, इसमें क्या है? सृष्टि का प्रत्येक प्राणी, जितनी भी योनियाँ हैं, उनमें से एक भी प्राणी दुनिया में ऐसा नहीं है, जो जायके के लिए खाता हो। खाद्य पदार्थों में स्वाभाविक जायका है। गुरुजी! स्वाभाविक जायका? हाँ बेटे, तूने खाद्य खाया ही नहीं है। तूने जायके खाए हैं और अपनी जीभ को चौपट कर डाला है। खाद्य पदार्थों में भी जायका होता है।

मित्रो! खाद्य पदार्थों में क्या जायका होता है? गोरखपुर में 'आरोग्य मंदिर' नामक एक संस्था है, जहाँ प्राकृतिक चिकित्सा का शिक्षण होता है। वहाँ से 'आरोग्य' नामक एक अखबार निकलता है। उसके संपादक श्री विट्ठलदास मोदी हमारे मित्रों में से हैं। एक बार वे हमारे घर घीयामंडी-मथुरा आ गए। हम लोग खाना खाने के लिए बैठ गए। हम दोनों के लिए थाली परोस दी गई। विट्ठलदास जी ने कहा—आचार्य जी! आप ऐसा करें—रोटी खाएँ। मैंने कहा—रोटी नहीं, तो यह और क्या रखा है? उन्होंने कहा—आप समझते तो हैं नहीं। हम कहते हैं कि आप आज रोटी खाएँ। मैंने कहा—रोटी से आपका क्या मतलब है? यह रोटी ही रखी है आपके सामने। मिठाई रखी हैं, पूरी-कचौरी रखी हैं। आपका क्या मतलब है? नहीं केवल रोटी खाएँ। केवल से क्या मतलब है और उससे क्या फायदा होगा?

उन्होंने कहा कि रोटी के अलावा थाली में से सारा सामान हटा दीजिए। उससे क्या फायदा होगा? आचार्य जी! उसमें—रोटी में ऐसा जायका है, जिसे कभी आपने चखा ही नहीं। रोटी में कोई ऐसा जादू है कि उसके साथ किसी और का चक्कर ही नहीं। अच्छा!

तुकाराम ने सेवाधर्म को भी ईश्वरभक्ति माना। उन्होंने सबसे पहले पूर्वजों द्वारा स्थापित विट्ठल मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। तुकाराम के पास धन तो था नहीं, उन्होंने श्रमदान के द्वारा इस कार्य को पूर्ण किया और इसी को भगवान की कायिक सेवा मान लिया। इसके लिए तुकाराम ने स्वयं पहाड़ से पत्थर लाकर एकत्र किए, मिट्टी भिगोकर गारा तैयार किया और फिर उसकी दीवारें बनाईं। यह सब कार्य उन्होंने अपना पसीना बहाकर किया।

अपने इस उदाहरण से यह संदेश दिया कि केवल कीर्तन और नाम जप ही भगवान की भक्ति के चिह्न नहीं हैं, वरन किसी प्रकार की प्रत्यक्ष सेवा भी भगवद्भक्ति का ही दूसरा रूप है।

सारा सामान हटा दिया गया। दाल हटा दी गई, शाक हटा दिया गया, दही हटा दिया गया। सब हटा दिया गया। केवल रोटी रख दी गई। हम लोगों ने रोटी खाना शुरू किया, तो उन्होंने कहा कि जल्दी-जल्दी नहीं चबाना। उसे धीरे-धीरे चबाते रहिए। उससे मुँह में ग्लूकोज बनता है। किसका? रोटी का जो अनाज है, स्टार्च है। मुँह में चबाते समय हमारी ग्रंथियों से रस निकलता है, जिससे स्टार्च का ग्लूकोज में परिवर्तन हो जाता है। तब यह एक अजीब-सा जायका बन जाता है।

हमने कहा कि ऐसा जायका तो हमने कभी नहीं खाया। कैसा मालूम पड़ता है? उन्होंने कहा कि अच्छा देखिए रोटी में गंध कैसी है? गंध का एक अजीब ही जायका आता है। मुँह से खा जाते हैं, उसकी गंध नाक तक चली जाती है। उस जायके की गंध मुँह में से लेकर नाक तक ऐसी आती है कि तबीयत खुश हो गई। आप केवल रोटी ही खाते रहें तो मजा आ जाए। आपको तो किसी चीज के स्वाद का तो पता ही नहीं। आप एक चीज का भी स्वाद नहीं ले पाते।

आप हर चीज के साथ में जायके-जायके की भरमार करते जाते हैं। नमक और शक्कर मिला करके आपने हर चीज के स्वाभाविक और प्राकृतिक जायके को खतम कर दिया। इसलिए आपका प्रत्येक खाद्य पदार्थ अखाद्य हो गया। खाद्य को आपने अखाद्य बना दिया। खाद्य को प्राकृतिक रूप में खाने में क्या आफत आ गई? यह सरल है, कठिन नहीं है। यह साधना नहीं मामूली बात है। हम एक ऐसे महात्मा को जानते हैं, जो भीख माँगकर लाते थे और सब चीजों को मिला करके खा जाते थे। हम और लोगों के नाम बता सकते हैं, मुद्दतें हो गईं, जिन्होंने नमक त्याग रखा है। स्वामी दिव्यानंद जी नागपुर के हैं और अक्सर मध्यप्रदेश का दौरा करते रहते हैं। उनको नमक खाए मुद्दतें हो गईं। कहिए साहब! आपका स्वास्थ्य कैसा है? अच्छा है। डॉक्टर रोज बताते हैं कि ब्लडप्रेशर की शिकायत है। नमक बंद कीजिए। गुरदे की शिकायत है, नमक बंद कीजिए। नमक तो जहर है, उसे बंद करके आपने कोई खास त्याग नहीं किया। इसमें कोई खास मशक्कत नहीं मालूम पड़ती। दस-पाँच दिन जरूर ऐसा मालूम पड़ेगा कि हमें क्या हो रहा है। महीने भर के लिए मिरच बंद कर दें, फिर दोबारा मिरच खाएँ, तो आपके मुँह में इतनी लार आएगी, इतना कष्ट होगा कि लगेगा कि हमको क्या चीज खिला दी गई? जहर खिला दिया गया।

अन्न का स्वाद ही नहीं, संस्कार भी देखें

मित्रो! यह मामूली-सी बात है। कौन-सी बात? जायके वाली बात। जीभ का संयम करने के लिए असली बात यह है कि आपने हराम का कमाया हुआ तो नहीं खाया। आपने कुसंस्कारी लोगों का बनाया हुआ तो नहीं खाया। अभी तो माताजी यहाँ बनाती हैं, इसलिए माताजी के बनाने से उनका संरक्षण है। माताजी चौके में बैठती हैं और आपके भोजन में ऐसी भावना भर देती हैं। अगर भविष्य में ऐसा न हो सका, तो हम चांद्रायण व्रत करने वालों के लिए दूसरे इंतजाम करेंगे। क्या इंतजाम करेंगे? हमने विचार कर रखा है कि स्टीम कुकर, प्रेशर कुकर का प्रबंध करेंगे। उसमें आप अपने खाद्य में से उतनी मात्रा कम कर लीजिए। चावल रख लीजिए, दाल रख लीजिए, शाक-सब्जी रख लीजिए और देखिए कोयला हम भर देते हैं, प्रेशर कुकर आपका हम भर देते हैं। आपका खाना बन जाएगा। बस, आप निकालकर खा लेना। आप बना लेना। क्यों? क्योंकि हम नहीं जानते कि आगे भविष्य में ब्रह्मवर्चस में चांद्रायण शिविर चलेगा कि नहीं चलेगा। चलेगा तो उसमें खाद्य का इंतजाम क्या करना पड़ेगा, हम नहीं जानते?

मित्रो! अभी तो खाद्य के इंतजाम में हमारी धर्मपत्नी हैं। खाद्य पर उनका सौ प्रतिशत नियंत्रण है। वे बैठती और देखती रहती हैं कि कहीं कोई कुसंस्कारी अन्न तो नहीं बनता। छींटा और छाप तो नहीं बन जाती, जो किसी पर कोई प्रभाव तो नहीं डालती। आगे भी आपको उपासना के संबंध में यहाँ या और कहीं कोई चमत्कार देखना हो, तो आप खाद्य पर ध्यान दीजिए। खाद्य की न केवल बनावट के बारे में, सफाई के बारे में, स्वच्छता के बारे में, बनाने वाले और पकाने वाले के बारे में, वरन यह भी ध्यान रखना कि आपका खाद्य ईमानदारी की कमाई का है कि नहीं है। आपने अनीति से तो धन नहीं कमाया है। अनीति से कमाया हुआ धन आपके लिए उपयोगी नहीं है। अनीति का धन खाएँगे, तो आपकी उपासना भी प्रभावित होती चली जाएगी। चोरी का धन, हरामखोरी का धन, बेईमानी का धन, बेटे, नहीं खा सकते आप। साधक को ब्राह्मण होना चाहिए।

मित्रो! गायत्री-उपासना के संबंध में हमारी सबसे पहली पुस्तक छपी थी, आपको मालूम है? आपको नहीं मालूम है। कौन-सी पुस्तक छपी थी? सबसे पहली पुस्तक का नाम था—'गायत्री ब्राह्मण की कामधेनु है।' इस नाम से जैसे ही किताब छपी, सब जगह यह कहा गया कि साहब! गायत्री तो ब्राह्मण की है। कोई और मत उपासना करना। कोई और करेगा, तो भ्रष्ट हो जाएगा। ब्राह्मण के अलावा और कोई उपासना नहीं कर सकता। हे भगवान! यह क्या हो गया? मैंने तो इसलिए किताब

छापी थी, ताकि लोग उसकी वास्तविक फिलॉसफी समझ सकें। लेकिन यह क्या? सब उलटा हो गया।

गायत्री ही कामधेनु है

मैं जो कुछ कहना चाहता था, ठीक उसका उलटा हो गया। फिर मैंने उस किताब को छापना बंद कर दिया। गुरुजी! आपने यह क्या किया? बेटे, मैंने नाम बदल दिया। क्या नाम रखा? 'ब्राह्मण' शब्द मैंने काट दिया और नाम रखा—'गायत्री ही कामधेनु है।' ब्राह्मण शब्द क्यों काट दिया? इसलिए कि गलतफहमी पैदा हो गई थी। 'ब्राह्मण' का अर्थ मैं कुछ और समझता था और उसे लोगों को समझाना चाहता था। लोगों ने उसका अर्थ निकाल लिया—बामन।

बामन कौन होता है? बामन बेटे, यह होता है—पचास + एक = इक्यावन, पचास + दो = बावन, पचास + तीन = तिरपन, पचास + चार = चौवन आदि। ये होते हैं—बामन। बामन कौन होता है? बामन एक वंश है, एक जाति है और ब्राह्मण? ब्राह्मण वंश नहीं हो सकते, जाति नहीं हो सकते। ब्राह्मण एक कर्म है, ब्राह्मण एक स्वभाव है। ब्राह्मण एक प्रकृति है। बामन जन्मजात हो सकता है, लेकिन ब्राह्मण जन्मजात नहीं हो सकता। ब्राह्मण प्रकृति से बनता है। प्रकृति के बिना ब्राह्मण नहीं बन सकता।

साहब! हम तो ब्राह्मण हैं। आप कौन से ब्राह्मण हैं? हम तो साहब गौड़ ब्राह्मण हैं। आप क्या काम करते हैं? हमने तो दुकान खोल रखी है? किसकी दुकान खोल रखी है? 'शर्मा फुटवियर' की। फुटवियर क्या होता है? अरे साहब! चप्पलों की दुकान है। आपकी दुकान चलती है? हाँ साहब! कमाते भी उसी से हैं और खाते-खिलाते भी हैं। बेचते हैं और खरीदते भी हैं। अच्छा तो आप शर्मा जी हैं। आप क्या करते हैं? साहब! हमारा—'शर्मा हेयर कटिंग सैलून' है। आप भी शर्मा जी हैं? हाँ हम भी शर्मा जी हैं, तो ठीक है। आपकी शरम भगवान कायम रखें। ऐसा न हो कि आपकी शरम चली जाए। हम भी शर्मा, आप भी शर्मा, आप भी अपनी शरम बचाइए और हम भी अपनी शरम स्वयं बचाएँगे। आपकी शरम बिगड़ गई, तो हमारी भी शरम बिगड़ जाएगी। शरम को बचाकर रखेंगे।

मित्रो! फिर मैंने क्या कहना शुरू कर दिया कि गायत्री को कामधेनु कहना शुरू कर दिया। आपके विचार श्रेष्ठ थे। नहीं बेटे, मैंने डर के मारे विचार बदल दिए। अब क्या कहेंगे? मित्रो! फिर भी मैं यही कहता हूँ कि गायत्री ब्राह्मण की कामधेनु है। अब भी आप कहते हैं? अभी तो आपने मना कर दिया था। आप फिर से कहने लगे? हाँ बेटे, मैं फिर से कहता हूँ कि गायत्री कामधेनु है और वह हरेक की हो सकती है, पर इसके लिए आदमी को अपना व्यक्तित्व ऐसा बनाना चाहिए, जिसको ब्राह्मण कहते हैं।

ब्राह्मण का पहला अर्थ, पहला कदम होता है—संयमी होना और तपस्वी होना। तपस्वी और संयमी अगर आप रहें, तो गायत्री का लाभ उठा सकते हैं। महाराज जी! हम तो नहीं उठा सकते। आप संयमी और तपस्वी नहीं हो सकते, पर मैं कहता हूँ कि आपको तो इतना करना ही होगा और इतनी उपासना करनी होगी कि आप अपना भी भला कर सकें और औरों का भी भला कर सकें। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

मित्रो! क्या आप किसी और की सहायता करना चाहते हैं या अपना भला करना चाहते हैं? अगर आप अपना भला करना चाहते हैं, तो हम आपकी सहायता कर सकते हैं। अगर कहीं आपको ऐसे अध्यात्म की आवश्यकता पड़े, जिससे आप अपना भला करने के साथ-साथ में औरों का भी भला करना चाहते हों, तो आपको तपस्वी बनना ही पड़ेगा। तपस्वी जीवन जीना ही होगा। इसके बिना कोई गति नहीं और कोई रास्ता भी नहीं है। नहीं साहब! हम तो विलासी जीवन जिएँगे और गायत्री मंत्र का चमत्कार भी देखेंगे। नहीं बेटे! यह नहीं हो सकता। हम तो अपनी विलासिता के ऊपर कहीं अंकुश नहीं रखेंगे और गायत्री का चमत्कार भी देखेंगे। बेटे, ऐसा नहीं हो सकता, अगर ऐसा रहा होता, तो प्राचीनकाल में गोपीचंद, भर्तृहरि से लेकर भगवान बुद्ध तक हर आदमी ने विलासी जीवन जिया होता, मौज उड़ाई होती, मजे उड़ाए होते और साथ-साथ में ग्यारह माला जप भी कर लिया होता और चमत्कार प्राप्त कर लिए होते, ऐसा नहीं हो सकता।

मित्रो! मैं फिर से कह रहा हूँ कि हमें तपस्वी जीवन जीना चाहिए। तपस्वी का उपक्रम जहाँ से आरंभ होता है, उसको मैं बीजारोपण कहता हूँ, वृक्षारोपण का शुभारंभ कहता हूँ। इसका आरंभ वहाँ से होता है, जहाँ आप जीभ के ऊपर अंकुश रखना शुरू करते हैं। जीभ के ऊपर अंकुश रखने से हमारा मतलब है—अपनी वाणी के ऊपर अंकुश रखना। आपकी वाणी छल-कपट

▶युवाक्रांति वर्ष◀

करने से नष्ट हो जाती है। जब आप किसी को धोखा देते हैं, तो उसको कहते हैं—छल। आपके भीतर जैसा है, वैसा ही बाहर कहिए। बाहर जैसा है, वैसा ही भीतर से कहिए। घुमा फिरा करके शब्दों का इस्तेमाल मत कीजिए। नहीं साहब! यह जमाना ही ऐसा है।

बेटे, जमाना पहले भी अच्छा था, अभी भी अच्छा है। जमाने में आपको चालाकी इसलिए करनी पड़ती है कि सत्य की सामर्थ्य का आपको पता नहीं है। सत्य से आदमी बड़े बनते हैं। नहीं साहब! झूठ से बनते हैं। बेटे, झूठ से नहीं बनते, तू मानता क्यों नहीं। नहीं साहब! सत्य से नहीं, झूठ से कमा लिए। बेटे, झूठ से कमाई नहीं होती। सत्य से कमाई आती है। झूठ बोलने वाले भी सत्य की आड़ में अपना उल्लू सीधा करते हैं। उन्हें भी सत्य की आड़ लेनी पड़ती है। [क्रमशः]

एक बार माधवेंद्रपुरी के शिष्य ईश्वरपुरी भ्रमण करते हुए नदिया आए और अद्वैताचार्य के यहाँ ठहरे। उनसे मिलने वहाँ चैतन्य महाप्रभु समय-समय पर आया करते थे। जब भी चैतन्य, ईश्वरपुरी से मिलने आते तो वे उनके द्वारा कुछ समय पूर्व लिखे गए ग्रंथ 'श्रीकृष्णलीलामृत' के श्लोक पढ़कर उन्हें सुनाया करते थे। उनको सुनकर चैतन्य बहुत प्रसन्न हो जाते थे। एक दिन ईश्वरपुरी ने उनसे कहा—"महाप्रभु! मैं अपनी विद्वत्ता प्रकट करने के लिए आपको श्लोक नहीं सुनाता हूँ। आप सुप्रसिद्ध विद्वान हैं। इसलिए जहाँ कहीं भी अशुद्धि हो, वहाँ मुझे सुधारते चलें।"

चैतन्य ने नम्रतापूर्वक कहा—"श्रीकृष्णकथा में शुद्धि या अशुद्धि कैसी? अपने भक्तिभाव में भक्तजन जो भी कुछ कहते हैं, वह शुद्ध ही माना जाता है। आप तो सच्चे भक्त हैं, इसलिए अशुद्धियों का प्रश्न ही नहीं उठता।" चैतन्य महाप्रभु आगे बोले—"व्याकरण को न जानने वाले व्यक्ति, 'विष्णवे नमः' के स्थान पर 'विष्णाय नमः' बोल जाते हैं; जबकि विद्वान शुद्ध उच्चारण ही करते हैं। इस तरह भाषा की दृष्टि से अंतर रहने पर भी नाम लेने का शुभ फल, दोनों को समान ही मिलता है; क्योंकि भगवान हृदय के भाव को ही देखते हैं, भाषा और व्याकरण के नियमों की जाँच करना उनका काम नहीं है।" चैतन्य के इस उत्तर ने ईश्वरपुरी के हृदय को भावों से भर दिया। वस्तुतः जो विद्वान सब तरह से सुयोग्य होने पर भी दूसरों के बढ़ावे का प्रयत्न करते हैं, वे ही सच्चे व महान पुरुष कहलाते हैं।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

देव संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने को प्रतिबद्ध विश्वविद्यालय



यजुर्वेद के चतुर्थ अध्याय में ऋषि भारतीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति घोषित करते हुए कहते हैं कि— **'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'**। अर्थात भारतीय संस्कृति ही विश्व की पहली एवं एकमात्र संस्कृति है। ऐसा कहने के पीछे का निहित अभिप्राय अन्य संस्कृतियों के अस्तित्व को नकारना नहीं, वरन यह कहना है कि संस्कृति मात्र उसको कहा जा सकता है, जिसके चिंतन में मानवता के गुण गहराई से समाविष्ट किए गए हों। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की सोच को लेकर विकसित हुई भारतीय संस्कृति इन सारे गुणों व मूल्यों का पर्याय कही जा सकती है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, भारतीय संस्कृति के इन्हीं विश्वव्यापी आदर्शों का साकार रूप कहा जा सकता है। कुलपिता परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी एवं कुलमाता परम वंदनीया माता भगवती देवी शर्मा जी का जीवन भी इसी वैश्विक सौहार्द एवं आत्मीयता का प्रतीक था। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की मूलभूत परंपराओं में भी उन्होंने इन्हीं गुणों को समाहित करने का स्वप्न देखा था, जो अब साक्षात् रूप लेता प्रतीत होता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के उद्देश्यों में प्रमुख उद्देश्य विश्व के विभिन्न कोनों से आ रहे आगंतुक विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति की चिंतन शैली में ढालना है, ताकि वे विश्व के सभी कोनों में जाकर सांस्कृतिक अग्रदूत की भूमिका का निर्वहन कर सकें। इस क्रम में मार्च माह में विश्वविद्यालय में लाटविया से आए २५ विद्यार्थियों के दल को योग, यज्ञ एवं भारतीय संस्कृति का प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

दो सप्ताह तक चले इस प्रशिक्षण का उद्देश्य इन विद्यार्थियों को मानवीय उत्कर्ष, प्रज्ञायोग, प्राकृतिक चिकित्सा एवं भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों में पारंगत करना था। उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय का लाटविया विश्वविद्यालय के साथ अनुबंध है, जिसके तहत देव संस्कृति विश्वविद्यालय वहाँ के विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष योग में स्नातक पाठ्यक्रम के लिए प्रशिक्षित करता है।

इन विद्यार्थियों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रांगण में महाशिवरात्रि पर्व के अवसर पर भगवान शिव का रुद्राभिषेक कर विश्वकल्याण की प्रार्थना भी की और साथ ही प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा पर बैठकर माँ गायत्री का नियमित ध्यान संपन्न किया। इस प्रशिक्षण सत्र के समापन सत्र को संबोधित करते हुए प्रतिकुलपति ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय का उद्देश्य ही वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को मूर्त्तरूप प्रदान करना है और लाटविया के इन विद्यार्थियों को यहाँ भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हुए वह उद्देश्य साकार होता नजर आता है।

श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या एवं श्रद्धेया जीजी ने इन सभी विद्यार्थियों को आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन प्रदान किया। लाटविया के दल के प्रमुख डॉ० आर्निस सिलिन्स ने पूरे दल के साथ श्रद्धेयद्वय के सम्मुख उनकी भाषा में लिखा गया गायत्री का भजन गाकर सुनाया। इस अवसर पर श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय, विश्वमानवता का कार्य कर रहा है। यहाँ का हर व्यक्ति आध्यात्मिकता का प्रतीक है और यह प्रसन्नता की बात है कि लाटविया के विद्यार्थी भी इन्हीं गुणों को लेकर लौट रहे हैं।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में रूस से आए एक बारह सदस्यीय दल ने योग के परंपरागत गुणों को सीखा। दल की संयोजक इलिया ने कहा कि उनका दल देव संस्कृति विश्वविद्यालय में यज्ञ एवं प्राणिक हीलिंग सीखने के लिए आया था और उन्होंने शांतिकुंज में रहकर इन सारे विषयों का अध्ययन संपन्न किया।

भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रसार के अभियान को गति देते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने मार्च-अप्रैल माह में लिथुआनिया के विल्नियस एवं कौनस विश्वविद्यालयों से आए चिकित्सकों के दल को भी एक

▶युवाक्रांति वर्ष◀

सप्ताह का योग एवं भारतीय संस्कृति का प्रशिक्षण संपन्न कराया। दल के प्रमुख डॉ० गोदा देनापियाने एवं डॉ० लीना रामसियात्ले ने इस प्रशिक्षण को एक ऐतिहासिक उपलब्धि बताया और कहा कि उनका दल विगत दस वर्षों से भारत में प्रशिक्षण प्राप्त करता रहा है, परंतु उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय में जो एक सप्ताह में सीखा, उसे वे पिछले दशक में अन्यत्र नहीं सीख पाए थे।

देव संस्कृति के वैश्विक प्रसार के अतिरिक्त, देव संस्कृति विश्वविद्यालय का दूसरा प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है। इसी भाव को विकसित करने के लिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारतीय सेना में अफसरों के विभिन्न पदों के लिए चयन हेतु एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह प्रशिक्षण देहरादून सैनिक छावनी के लेफ्टिनेंट कर्नल योगेंद्र चितवान, लेफ्टिनेंट कर्नल पूनम पांडेय और मेजर आकाश ठाकुर द्वारा दिया गया।

तीन सत्रों में चले इस प्रशिक्षण सत्र में प्रथम सत्र में सेना की महत्ता, दूसरे में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए सेना में अवसर और तीसरे सत्र में सेना में भरती हेतु चयन प्रक्रिया को समझाया गया। इस अवसर पर कर्नल चितवान ने बताया कि सेना में जाने वाले विद्यार्थी साहस के धनी होते हैं और ऐसे विद्यार्थी मात्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय में ही मिल सकते हैं। इस अवसर पर कुलपति श्री शरद पारधी जी ने सैन्य अफसरों का सम्मान किया और इस प्रशिक्षण सत्र को महत्त्वपूर्ण घोषित किया।

अनेक शैक्षणिक गतिविधियों व राष्ट्रप्रेम कार्यक्रमों के मध्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में होलिकोत्सव का हृदयस्पर्शी कार्यक्रम तथा विश्वविद्यालय का वार्षिकोत्सव कार्यक्रम भी संपन्न हुए। विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा सभी विद्यार्थियों के खेल भावना के साथ खेलने एवं जीवन को एक उत्सव के रूप में लेने की प्रेरणा देने के साथ प्रारंभ हुआ। तीन दिन चले इस कार्यक्रम में विद्यार्थियों ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं क्रिकेट, कबड्डी, फुटबाल, बॉलीबाल, बैडमिंटन, टेबल टेनिस जैसे अनेक खेलों में भागीदारी करते हुए अनेक पदक जीते।

उत्सव की इसी भावना को जाग्रत रखते हुए विश्वविद्यालय परिसर में होलिकोत्सव का रंगारंग कार्यक्रम संपन्न हुआ। समस्त भारत को एक सार्थक संदेश देते हुए विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने होलिका दहन के कार्यक्रम को अश्लीलता निवारण दिवस के रूप में मनाया। इसके साथ ही रंगों के स्थान पर फूलों के द्वारा होली खेलने की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने विद्यार्थियों के साथ फूलों की होली खेली। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि होली का अर्थ—मन के मैल को धोना है और जो मन धो लेता है, वह सच्चे अर्थों में पवित्र हो जाता है। इस तरह जीवन में उत्सव की भावना को धारण करते हुए विश्वविद्यालय के सदस्य एवं विद्यार्थी नवसंवत्सर की अगवानी के लिए तैयार होने लगे। ❑

महाराज विक्रमादित्य वीर, न्यायप्रिय व अत्यंत उदार शासक थे। एक बार वे अपने गुरु के दर्शन के लिए उनके आश्रम गए और उनसे बोले—''महाराज! मुझे कोई ऐसा प्रेरक वाक्य बताइए, जो महामंत्र बनकर न केवल मेरा, बल्कि मेरे उत्तराधिकारी का भी मार्गदर्शन करता रहे।'' सुनकर संत ने उन्हें संस्कृत का एक श्लोक लिखकर दे दिया, जिसका तात्पर्य था—''हमें प्रतिदिन यह चिंतन करना चाहिए कि आज का जो दिन व्यतीत हुआ, वह पशुवत् व्यतीत हुआ या मानवोचित रहा।'' महाराज विक्रमादित्य ने अपने सिंहासन के ऊपर उस प्रेरक वाक्य को अंकित करा दिया। एक दिन वे कोई पुनीत कार्य नहीं कर पाए तो उनकी दृष्टि उस वाक्य पर पड़ी। मन में यह सोच लिए वे बाहर निकले तो उन्होंने एक गरीब किसान को ठंढ में ठिठुरते देखा। उन्होंने अपना गरम उत्तरीय उतारकर उसे ओढ़ा दिया और लौट आए। लौटते समय उन्हें लगा कि उनका दिन मानवोचित रहा है।

मातृशक्ति श्रद्धांजलि नवसृजन महापुरश्चरण (iii)
कैसे बचाएँ बचपन-बनाएँ सुसंस्कारित पीढ़ी

विगत माह हमने युवाशक्ति-नारीशक्ति एवं परिजनों के लिए उपासनापरक, साधनापरक एवं आराधनापरक कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला था। यह युवाक्रांति वर्ष का द्वितीय उत्तरार्द्ध चल रहा है। अभी इससे संबंधित कुछ बातें और कहनी हैं, जो पिछले माह छूट गई थीं। पहले उन पर चर्चा कर लें। फिर आगे की बात करेंगे। ये पंक्तियाँ शिरडी (नासिक) में हो रहे कन्या कौशल सत्र की वेला में लिखी जा रही हैं। मातृशक्ति ही बालक-बालिका को जन्म देती हैं। बाल्यकाल बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं स्वर्णिम समय है। इस समय यदि माता, पिता, गुरु तीनों का संरक्षण मिला, तो बचपन सँभल जाता है और एक आदर्श नागरिक का निर्माण होता है। बचपन बचाना कितना जरूरी है, इसे यदि समझ लिया जाए और संस्कारों से उसे अनुप्राणित कर दिया जाए, तो मानना चाहिए कि हमने राष्ट्र की नींव मजबूत कर दी। आइए! इस अंक में हम बचपन से शुरू करते हैं।

बचपन से पूर्व

बालक हो या बालिका, भ्रूण के रूप में माँ के गर्भ में स्थापित होता है। माँ का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य यह तय करता है कि बच्चा कैसा होगा। प्रिनेटल केयर, एंटीनेटल केयर को हमारे यहाँ चिकित्सा विज्ञान में बड़ा महत्त्व दिया गया है। माँ का पोषण सही है कि नहीं, इस पर ध्यान दिया जाता है। माँ मात्र अपने लिए नहीं आहार ग्रहण करती है, वह अपने अंदर पनप रहे उस पिंड के लिए भी आहार ग्रहण करती है, क्योंकि उसके पास आहार का कोई स्रोत नहीं है। वह तो एक मिनी सागर में तैरता-एक शिराओं के गुच्छक से माँ के गर्भाशय से जुड़ा निरंतर अपनी माँ के रक्त से आ रहे पोषक द्रव्यों—ऑक्सीजन आदि के सहारे जीता है। श्वास भी उसे उसी स्रोत से मिलती है। माँ का चिंतन जैसा होता है, वैसा ही बालक-बालिका का चिंतन होता है। संस्कार गर्भ स्थापित होने के साथ ही संचरण होने लगते हैं। क्रोध, हठ, चिढ़, प्रसन्नता, मुस्कराहट आदि भी क्रमशः उसी दिन से बच्चे में प्रविष्ट होने लगते हैं।

शायद यही कारण है कि हमारी संस्कृति में माँ के गर्भाशय में पल रहे बालक की मनःस्थिति को ध्यान में रख अधिकाधिक विश्राम, मनोविकार मुक्त रहने, सही पोषक आहार लेते रहने पर अधिक ध्यान दिया जाता है। तो यात्रा ९ माह पूर्व ही आरंभ हो जाती है। बालक जन्म बाद में लेता है, पर उसका भावनात्मक, आध्यात्मिक एवं शरीरगत विकास, भविष्य का स्वरूप गढ़ना उसी दिन से चालू होता है। हम सभी मदालसा की कथा से अवगत हैं। उसके तीन पुत्र तेजस्वी महापुरुष के रूप में विकसित हुए। पिता को चिंता लगी कि अध्यात्मप्रधान चिंतन वाली मदालसा ने तीन साधु बालकों को जन्म दिया, पर राज्य कौन चलाएगा। फिर राजा के आग्रह पर चौथा पुत्र राजपुरुष के रूप में विकसित हुआ और अलर्क ने पिता का सिंहासन सँभाला। कितनी सूक्ष्म एवं अत्यंत ही गहराई तक जाने वाली यह प्रक्रिया है। हम राष्ट्र के नागरिकों के निर्माण की बात करते हैं तो पहले गर्भस्थ शिशु पर ध्यान दें, जन्मदात्री माँ के मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक, शारीरिक विकास पर ध्यान दें। साथ ही माँ के सहयोगी उस शिशु के पिता पर भी ध्यान दें, परिवार का निर्माण भी श्रेष्ठतम स्तर का हो एवं साथ ही आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए गुरु का मार्गदर्शन भी हो। स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था माँ व पिता, दोनों के स्तर पर हो। श्रेष्ठ चिंतन श्रेष्ठ संतान को जन्म देगा। यदि '**नेगिटिविटी**' से माँ घिरी रही, तो मनोविकारग्रस्त बालक जन्म लेगा।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

शांतिकुंज हरिद्वार के माध्यम से गर्भसंस्कार (वुम्ब सेरेमनी) का क्रम पूरे देश में चलाया गया है। अब कई प्रांतों की सरकारों ने इसे अनिवार्य कर दिया है। कौन नहीं चाहता कि उसे सुसंतति प्राप्त हो। सभी धर्म के लोग इसमें भागीदारी कर रहे हैं और सही अर्थों में नर-रत्नों, नारी शक्तियों को विनिर्मित किया जा रहा है। यह बात यदि समझ ली जाए तो हम बचपन सँभाल सकते हैं। बचपन सँभल गया तो तरुणाई को एवं फिर युवाशक्ति के निर्माण की बात सोची जा सकती है। युवा यदि सशक्त हुए तो सशक्त राष्ट्र के नवनिर्माण की बात सोची जा सकती है। इसलिए पहला चरण गर्भस्थ शिशु एवं गर्भधारिणी माँ का, उसके परिवार के वातावरण को आध्यात्मिकता से अभिपूरित करने का होगा। इतना समझ में आ गया तो आगे की यात्रा सरल है।

कैसे बने सही बचपन

बचपन पर आज कई प्रकार के संकट मँडरा रहे हैं। यदि उन्हें जनमानस, पढ़े-लिखे इस देश के नागरिक अभिभावक, नए बन रहे माता-पिता समझ लें तो बचपन बचाया जा सकता है। राष्ट्र की नींव है बचपन। सारी कुंठाएँ, मनोविकार, रोगों की जड़ें इसी बचपन में जन्म लेती हैं, पनपती हैं एवं फिर तरुण, युवा में विकसित होती चली जाती हैं। हम जिसे **प्रॉबलम चाइल्ड** कहते हैं, शायद वह पैदा ही न हो, यदि सबका ध्यान एक साथ बचपन पर हो। बचपन पर मँडराते संकट कुछ इस प्रकार हैं।

(i) बाल्यकाल में ही बूढ़ा बनाने का कुचक्र—*अत्यधिक महत्त्वाकांक्षाएँ पालना। उसके बचपन को* कुचलने का षड्यंत्र। सोशल मीडिया से आज से दस या पंद्रह वर्ष पूर्व के बच्चे से पहले रूबरू होता आज का बचपन ध्वस्त हो रहा है। छोटे बच्चों-बच्चियों से सुपरमैन, डांस गर्ल, इंडियन आइडल होने की अपेक्षा के साथ माता-पिता अपने ख्वाब उनके माध्यम से पूरा करते हैं। इस तरह बचपन गुम होता जा रहा है। उसे पहले ही बूढ़ा बनाने का कुचक्र आधुनिक पीढ़ी द्वारा रचा जा रहा है।

(ii) अनर्गल जानकारियों के बोझ तले दबता बचपन—अशिक्षित, अल्पशिक्षित माता-पिता जरूरत से ज्यादा जानकारियाँ बच्चों को देना चाहते हैं। बिना बाल-मनोविज्ञान जाने वे एवं उनके शिक्षक, जो मन चाहे वह ज्ञान ठूँसते रहते हैं।

(iii) स्कूल, कोचिंग, ट्यूशन, होमवर्क का निरंतर बढ़ता तनाव—यह इस सदी में इतनी तेजी से बढ़ा है कि हर कोई कोचिंग प्रोफेशनल तरीके से लेना चाहता है। हर कोई डॉक्टर, इंजीनियर, मैनेजर बनना चाहता है। पर क्या कहीं कोई कलाकार, चित्रकार, कवि, गायक, क्रिएटिव मन वाला भी उनमें छिपा है, कोई नहीं जानना चाहता।

(iv) फास्ट फूड, जंक फूड, सॉफ्ट ड्रिंक आदि से चौपट हो रहा स्वास्थ्य—जिस समय हम लोग अंकुरित अनाज एवं फल खाकर स्कूल जाया करते थे, आज नाश्ते में भी व स्कूल के खाने के टिफिन में आलूचिप्स, जंक फूड हैं। इनसे मानसिक विकास अवरुद्ध हो रहा है।

(v) असंयमित-अनियमित-श्रमहीन-टीवी सीरियल देखकर खाना व सोना—ऐसी **जीवनशैली।**

(vi) बस्ते का बोझ—निरंतर बढ़ती कमर के दरद की परेशानियों के बीच भी शिक्षाविदों द्वारा नासमझी। होमवर्क के नाम पर ढेरों किताबें दे दी जाती हैं, तो बच्चा खेलेगा कब? लिखेगा कब? आज न्यूरोसर्जन पीठ की हड्डी के विकारों का जन्म बच्चे के बचपन का बस्तों से होता मान रहे हैं।

(vii) भाषा की बाध्यता—अँगरेजी बोलना जरूरी। स्मार्टनेस का प्रतीक। नहीं बोल पाने पर दंड। एक अतिरिक्त दबाव इस संस्कृति प्रधान देश में, जहाँ संस्कृत व हिंदी कभी अनिवार्य हुआ करती थीं।

(viii) पश्चिमी कानफोड् संगीत, अश्लील दृश्य—सहज ही नजर आ जाते गंदे एवं पाश्चात्यीकरण को उकसावा देते विज्ञापन। फिल्मों का कहर। उन पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं।

(ix) इंटरनेट का दुरुपयोग—स्मार्टफोन अब ३-४ वर्ष के बच्चे भी प्रयोग कर रहे हैं। सेल्फी ले रहे हैं। इंटरनेट ने पोर्नोग्राफी का दरवाजा खोल दिया है। माता-पिता-शिक्षक के पास समय ही कहाँ है कि देख सकें कि कहाँ क्या सर्फिंग हो रही है। ३ जी, ४ जी, अब न जाने कहाँ जाकर रुकेगा। हाँ! मानसिक विकास धीरे-धीरे अवरुद्ध होता जाएगा, यदि बचपन को हमने अभी नहीं सँभाला।

(x) शिक्षा-ही-शिक्षा, विद्या नहीं—आज कहीं विनम्रता, सुसंस्कारिता आने वाली विद्या नहीं पढ़ाई जा रही। मात्र शब्दज्ञान बढ़ाने वाली शिक्षा-उदरपूर्ण शिक्षा पढ़ाई जा रही है, जहाँ शिक्षा को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है, विद्या-संस्कार-आध्यात्मिकता को पारिवारिक मूल्यों को नहीं।

(xi) लिंगभेद—लड़का-लड़की में भेद एवं इसी कारण भ्रूण में कन्या की हत्या (कानून बन जाने के बावजूद) २१वीं सदी की सबसे बड़ी समस्या बनी हुई है। न जाने हम किस समाज की ओर बढ़ रहे हैं?

(xii) बालश्रम, शोषण, अपहरण, सेक्सुअल एब्यूज आदि—यह हमारे देश की त्रासदी ही है कि बचपन में जिन्हें लिखना-पढ़ना जीवन निर्माण की विद्या सीखनी चाहिए थी, वे उस आयु में ढाबे में 'छोटू' बने बड़ों के शोषण के पात्र बन जाते हैं। छोटी आयु के बच्चों-बच्चियों का अपहरण एवं शोषण नियमित हो रहा है। हमारे देश के एक सुप्रसिद्ध ख्यातिनाम व्यक्ति श्री कैलाश सत्यार्थी, जिन्हें इसी विषय पर नोबेल पीस पुरस्कार मिला है। (२०१४), अभी तक ८५००० बच्चों को बचा चुके हैं एवं निरंतर लगे हुए हैं। पर क्या एक कैलाश जी काफी हैं? क्या हमें समाज के हर वर्ग में यह जागरूकता पैदा नहीं करनी होगी। बालश्रम एवं उनका सेक्सुअल एब्यूज (एक प्रकार से यौन-शोषण) हमारे आज के विकसित आधुनिक समाज के मुख पर तक तमाचा है। श्री कैलाश जी हमारे पाँचवें दीक्षांत समारोह १५-१६ अप्रैल २०१७ के मुख्य अतिथि थे। उनसे मिलकर लगा कि गायत्री परिवार को भी उनके आंदोलन को एक सहारे का हाथ देना चाहिए। हमें नाम नहीं चाहिए, पुरस्कार नहीं चाहिए, हमें अपने भोले बच्चों का बचपन चाहिए, उनका समुचित विकास चाहिए।

समाधान के सूत्र

(१) गर्भ संस्कारों (वुम्ब सेरेमनी-पुंसवन संस्कार के साथ माँ के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य की पूरी सुरक्षा) की शृंखला पूरे देश में जाति-धर्म-संप्रदाय-समाज के भेद से ऊपर उठकर। शिविरों का आयोजन एवं जनजाग्रति।

(२) जन्म के पश्चात—नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारंभ, दीक्षा संस्कार का श्रम। वेदारंभ संस्कार से ही स्कूलों में-गुरुकुलों में प्रवेश। सभी शक्तिपीठों-प्रज्ञापीठों-मंडलों एवं चेतना केंद्र पर इसी निमित्त उपयुक्त व्यवस्था। देश भर के आँगनबाड़ी केंद्रों से सहयोग लेना।

(३) बाल संस्कारशालाओं का संचालन—बड़े अनोखे प्रयोग गायत्री परिवार ने इस क्षेत्र में किए हैं। अभी सवा लाख बाल संस्कारशालाओं का क्रम पूरे देश में चल रहा है। शक्तिपीठों पर, मंडलों में, घरों में माता-बहनों द्वारा, स्टेशन के प्लेटफार्मों पर अनाथ बच्चों हेतु (पटना एक उदाहरण है), बेयर फुटेड स्कूल्स एवं ग्रीष्मकालीन बाल संस्कारशालाओं का संचालन।

(४) बाल संस्कारशालाओं की तर्ज पर किशोर संस्कारशालाओं का संचालन। यह सबसे नाजुक उम्र है। क्या कोई इस क्षेत्र में आगे आएगा? गायत्री परिवार साथ देने को तैयार है।

(५) कन्या कौशल शिविरों का आयोजन—सुसंस्कारी परिवारों की सुदृढ़ नींव स्थापित करना। नारी जागरण का-सशक्तीकरण—शिक्षा, सुरक्षा, संस्कार, स्वास्थ्य, स्वावलंबन का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तंत्र।

(६) पारिवारिक युवा सम्मेलन—बेटे-बहू, बेटी-दामाद के दिव्यता के संस्कार विकसित करना। यह प्रयोग अत्यधिक सफल रहा है।

अभी इसी पर कुछ और चिंतन, मातृसत्ता के इस शताब्दी महापुरश्चरण के परिप्रेक्ष्य में आगामी अंकों में।

(क्रमशः)

▶युवाक्रांति वर्ष◀

चलो योग का पथ अपनाएँ

चलो योग का पथ अपनाएँ,
बहिर्योग के संग-संग आंतरिक क्रियाएँ भी जुड़ जाएँ।
योग सिखाता है अनुशासन,
नियमबद्ध होता है जीवन,
सभी स्वस्थ हों, प्राणवान हों,
व्यक्ति समुन्नत हों, महान हों,
विषम परिस्थिति में भी संयत होकर हम संतुलन बनाएँ।
चलो योग का पथ अपनाएँ।
हो आहार-विहार संतुलित,
अंतरंग-बहिरंग सुविकसित,
सही धारणाएँ जब होंगी,
उचित चेष्टाएँ तब होंगी,
तन निरोग हों, बढ़े मनोबल, अंतर्मन उज्ज्वल हो जाएँ।
चलो योग का पथ अपनाएँ।
इंद्रिय-बल संयत हो जाए,
मन सामर्थ्य सृजन की पाए,
बुद्धि विवेकवान हो जाए,
चित्त सहज निर्मल कहलाए,
अहंकार के संग सभी मिल आत्मबोध अनवरत जगाएँ।
चलो योग का पथ अपनाएँ।
ऐसा हो यह योग हमारा,
रहे नहीं भीतर अँधियारा,
पथ की स्वच्छ दिशा हो जाए,
जाग्रत जिजीविषा हो जाए,
निर्विचार हो परम लक्ष्य की ओर समन्वित कदम बढ़ाएँ।
चलो योग का पथ अपनाएँ।

—शचीन्द्र भटनागर

▶युवाक्रांति वर्ष◀